खण्ड 4

प्रातिशाख्यः भाग दो

खण्ड चार का परिचय

ऋक्प्रातिशाख्य के रचयिता आचार्य शौनक हैं। आचार्य शौनक ने जिस 'पार्षद' या 'प्रातिशाख्य' का निर्माण किया वह 'ऋक्प्रातिशाख्य' है। 'पार्षद' का अर्थ है- 'परिषद्' या 'सभा' अथवा 'गोष्ठी'। प्राचीन काल में ऐसी परिषदें संगठित रहती थीं जिनमें ध्वनि-विज्ञान और व्याकरण से सम्बन्धित विषयों पर नियमित रूप से विचार होता था। ऐसी परिषदों से सम्बद्ध होने के कारण ही प्रातिशाख्यों को 'पार्षद' या 'परिषद्-सूत्र' कहते हैं।

'ऋग्वेद-प्रातिशाख्य' या 'ऋक्प्रातिशाख्य' का विषय विवेचन यहाँ किया जा रहा है, जिससे प्रातिशाख्यमात्र के वण्र्य विषयों से सामान्य परिचय प्राप्त हो सकता है। इस प्रातिशाख्य में 18 पटलों में से पहला पटल-संज्ञा-प्रकरण में इस शास्त्र के अनेक पारिभाषिक शब्दों-स्वर, व्यंजन, स्वरभक्ति, रक्त, नाभि, प्रगृह्य आदि विशिष्ट शब्दों का लक्षण दिया हुआ है।

वेद अभ्यास की प्रक्रिया को 5 रूपों में देखा जाता है-अध्ययन, विचार, अभ्यास, जप और अध्यापन। प्रातिशाख्य में इन पांचों प्रक्रियाओं का विस्तृत रूप में वर्णन किया गया है। इनमें अध्ययन का तात्पर्य है कि- वेद का श्रवण करना। विचार का तात्पर्य होता है- मनन करना और विचार भी दो प्रकार के माने गए हैं कि मन्त्र का अर्थ रूप में विचार करना और दूसरा लक्षण रूप में विचार करना। इस विषय में आचार्य यास्क ने निरुक्त में कहा है कि -

स्थाणुरयं भारहरः किलाभूत् अधीत्य वेदं न विजानाति योर्थम्।

योर्थम् इत् सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा।।

इसका अर्थ यह हुआ कि जो व्यक्ति वेद को पढ़कर उसका अर्थ नहीं जानता है, वह भार ढोने के समान अथवा ठूठ वृक्ष के समान है और जो अर्थ को जानता है वह सभी कल्याण को प्राप्त कर लेता है तथा ज्ञान से पाप को नष्ट कर स्वर्ग को प्राप्त कर लेता है। इसलिए निरुक्त में मन्त्र के अर्थ का विचार करने की बात पर जोर दिया गया है।

यह खण्डर प्रातिशाख्य भाग 2 के वर्णन से सम्बन्धित है। शिक्षा पटल की चर्चा इसके पहले वाले खण्ड में नहीं की जा सकी। अन्य विषय भी अछूते रह गए । इसलिए द्वितीय खण्ड में शिक्षा पटल, वेद के अध्ययन की प्रक्रिया, वैदिक देवता, देवताओंके स्वरूप आदि के साथ प्रस्तुत खण्डण का वर्णन विराम को प्राप्त हुआ है। इसप्रकार अध्ययन करने के पश्चात आप प्रातिशाख्यों के विभिन्न ज्ञानात्मकपक्षों का उल्लेख करने, उनका वर्णन करने सक्षम हो जाएंगे।

इकाई 1 ऋक्प्रातिशाख्यः शिक्षा पटल

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 ऋक्प्रातिशाख्य

1.2.1 शिक्षा–पटल का प्रतिपाद्य विषय

1.2.2 शिक्षा–पटल के सूत्रों का भाष्यानुसार अनुवाद

1.3 सारांश

1.4 शब्दावली

1.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.6 सन्दर्भ–ग्रन्थ

1.7 बोध–प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप :

- ऋक्प्रातिशाख्य का संक्षिप्त परिचय दे सकेंगे।
- ऋक्प्रातिशाख्य के प्रतिपाद्य विषय का उल्लेख कर सकेंगे।
- ऋक्प्रातिशाख्य के शिक्षा–पटल के वैशिष्ट्य का वर्णन कर सकेंगे।
- ऋक्प्रातिशाख्य के अन्तर्गत वर्णित सूत्रों का भली–भाँति अर्थ प्रतिपादन कर सकेंगे।
- शिक्षा–पटल के अनुसार वर्णों का स्वरूप विश्लेषित कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

ऋग्वेदप्रातिशाख्य को 'ऋक्प्रातिशाख्य' भी कहते हैं। यह एक अनमोल ग्रन्थ है। मानव–जाति के इतिहास के ज्ञान के लिए, भारतीय संस्कृति को समझने के लिए और भाषा–विज्ञान के उचित ज्ञान के लिये वेदों का अध्ययन आवश्यक माना जाता है। षड्वेदाङ्गों– शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष। इनके ज्ञान, मौलिक अनुशीलन के बिना वेदों का अध्ययन पूर्ण नहीं माना जा सकता है और इनके बिना वेदों को भली–भाँति नहीं समझा जा सकता है।

ब्राह्मण–काल में आर्य लोग गुरु–मुख से संहिता युक्त वैदिक मन्त्रों का अध्ययन करके उनको स्मरण रखते थे। बाद में जब लोक–भाषा का विकास हुआ तो संहिता युक्त वैदिक मन्त्रों की भाषा से आर्य लोग परिचित होने लगे। ऐसी परिस्थिति में वर्ण, स्वर, मात्रा, सन्धि, छन्द आदि के विशिष्ट नियमों के बिना ज्ञान के वैदिक–मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण कठिन–सा हो गया। इसकी आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रातिशाख्यों के रूप में संसार का प्राचीनतम वैज्ञानिक ध्वनि–अध्ययन भारत में उत्पन्न हुआ। प्रातिशाख्यों में पाँच अधिक महत्त्वपूर्ण हैं– ऋग्वेदप्रातिशाख्य, तैत्तिरीयप्रातिशाख्य, वाजसनेयिप्रातिशाख्य, अथर्ववेदप्रातिशाख्य तथा ऋक्तन्त्र।

सभी वैदिक मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण के लिए वेद की प्रत्येक शाखा का ध्वनि विषयक अध्ययन सम्पन्न हुआ। एक–एक शाखा से सम्बद्ध होने के कारण ही ये ग्रन्थ 'प्रातिशाख्य' कहलाते हैं– **'शाखायां शाखायां प्रतिशाखम्, प्रतिशाखं भव प्रातिशाख्यम्।'** उदात्त आदि स्वरों, वर्णों की सन्धियों, वर्णों के उच्चारण के गुणों और दोषों, वर्णों की उत्पत्ति, पदपाठ से संहितापाठ बनाने के नियमों आदि अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का सुसम्बद्ध विवरण इन प्रातिशाख्यों में प्रस्तुत किया गया है। वैदिक–मन्त्रों के अर्थज्ञान के लिए जिस प्रकार निरुक्त ग्रन्थ उपयोगी है उसी प्रकार मन्त्रों के बाह्य स्वरूप के ज्ञान के लिए प्रातिशाख्य ग्रन्थ उपयोगी हैं।

आप सभी के मन में यह प्रश्न आ सकता है कि मन्त्रों के बाह्य स्वरूप के ज्ञान के लिए शिक्षा ग्रन्थों, व्याकरण–ग्रन्थों और छन्द ग्रन्थों के होते हुए प्रातिशाख्य ग्रन्थों की क्या उपयोगिता है? इसका उत्तर है कि शिक्षा–ग्रन्थ, व्याकरण–ग्रन्थ और छन्द–ग्रन्थ सभी वेदों के विषय में सामान्य बातें बतलाते हैं, उनका सम्बन्ध वेद की किसी विशेष शाखा के साथ नहीं है। परन्तु प्रातिशाख्य का सम्बन्ध मुख्य रूप से वेद की किसी एक विशिष्ट शाखा के साथ होने के कारण प्रत्येक प्रातिशाख्य शाखा विशेष का विश्लेषण करके उसका विशिष्ट अध्ययन प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त क्रमपाठ, क्रम–हेतु, वेदों का अध्ययन इत्यादि अनेक विषयों का प्रतिपादन भी प्रातिशाख्य–ग्रन्थों में किया गया है, जिन्हें शिक्षा–ग्रन्थों, व्याकरण–ग्रन्थों और छन्द–ग्रन्थों में स्थान नहीं मिला है।

1.2 ऋक्प्रातिशाख्य

ऋक्प्रातिशाख्य ऋग्वेद–संहिता से सम्बन्धित है। ऋक्प्रातिशाख्य के रचयिता आचार्य शौनक हैं। आचार्य शौनक ने जिस 'पार्षद' या 'प्रातिशाख्य' का निर्माण किया वह 'ऋक्प्रातिशाख्य' है। 'पार्षद' का अर्थ है– 'परिषद्' या 'सभा' अथवा 'गोष्ठी'। प्राचीन काल में ऐसी परिषदें संगठित रहती थीं जिनमें ध्वनि–विज्ञान और व्याकरण से सम्बन्धित विषयों पर नियमित रूप से विचार होता था। ऐसी परिषदों से सम्बद्ध होने के कारण ही प्रातिशाख्यों को 'पार्षद' या 'परिषद्–सूत्र' कहते हैं। निरुक्त के व्याख्याकार दुर्गाचार्य ने निरुक्त 1/17 की व्याख्या करते हुए कहा है– **"स्वचरणपरिषद्येव यैः प्रतिशाखा–नियतमेव पदावग्रहप्रगृह्यक्रमसंहितास्वरलक्षणमुच्यते तानीमानि पार्षदानि प्रतिशाख्यानीत्यर्थः"**– अर्थात् पार्षद या प्रातिशाख्य वे ग्रन्थ हैं जो अपने अध्ययन करने वाले की परिषद् में एक शाखा से सम्बद्ध पदविभाग, प्रगृह्य, क्रमपाठ, संहितापाठ और स्वर के लक्षण को कहते हैं। किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के चारों ओर बैठने वाले सहायक व्यक्तियों के लिए भी 'पार्षद' शब्द का प्रयोग होता है। इस दृष्टि से भी प्रातिशाख्यों को, वेदों का सहायक होने के कारण, पार्षद कहा जा सकता है।

'ऋग्वेद–प्रातिशाख्य' या 'ऋक्प्रातिशाख्य' का विषय विवेचन यहाँ किया जा रहा है, जिससे प्रातिशाख्यमात्र के वर्ण्य विषयों से सामान्य परिचय प्राप्त हो सकता है। इस प्रातिशाख्य में 18 पटलों में से **पहला पटल–संज्ञा–प्रकरण** में इस शास्त्र के अनेक पारिभाषिक शब्दों–स्वर, व्यञ्जन, स्वरभक्ति, रक्त, नाभि, प्रगृह्य आदि विशिष्ट शब्दों का लक्षण दिया हुआ है। **दूसरा पटल–संहिता पटल** में प्रश्लिष्ट, क्षैप्र, उद्ग्राह, भुग्न आदि अनेक प्रकार की सन्धियों का उदाहरण के साथ लक्षण दिया गया है। **तीसरा पटल–स्वर पटल** में स्वरों के परिचय के बाद विसर्जनीय सन्धि (विसर्ग का रेफ में बदलना), 'नकार' के अनेक परिवर्तन, नति सन्धि (स तथा न को मूर्धन्य वर्ण परिवर्तन स = ष तथा न = ण), क्रमसन्धि (वर्ण का द्विवचन) तथा व्यञ्जनसन्धि, प्लुतिसन्धि

आदि अनेक प्रकार की सन्धियों का विस्तृत परिचय **चौथे पटल** से लेकर **नवें पटल** तक दिया गया है। **दसवें** और **ग्यारहवें पटल** में क्रमपाठ का विवरण है, जिसमें वर्णों के तथा उदात्तादि स्वरों के परिवर्तन के नियमों का पूर्ण उल्लेख है। **बारहवें** और **तेरहवें पटल** में पदविभाग, व्यञ्जनों के रूप तथा लक्षण की अनेक प्राचीन आचार्यों के विचारों की विवेचना है। **चौदहवें पटल** में वर्णों के उच्चारण में होने वाले दोषों का उल्लेख है। **पन्द्रहवें पटल** में वेदों के अध्ययन की पद्धति का परिचय है। अन्तिम तीन **सोलहवें से अट्ठारहवें पटलों** में छन्दों– गायत्री, उष्णिक्, बृहती, पंक्ति आदि का विस्तृत वर्णन छन्दःशास्त्र के अध्ययन के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

वृत्ति– ऋक्प्रातिशाख्य के सूत्रों पर विष्णुमित्र की वृत्ति दी गई है। विष्णुमित्र की वृत्ति केवल आरम्भ के दो वर्गों पर ही मुद्रित हुई है। इस वृत्ति के आरम्भ के अनुसार इनका मूल निवास 'चम्पा' था। ये वत्सकुल में उत्पन्न पार्षद श्रेष्ठ देवमित्र के पुत्र थे। विष्णुमित्र की यह वृत्ति केवल आरम्भ के दो वर्गों पर प्रकाशित है, परन्तु पूरे प्रातिशाख्य के 18 पटलों पर भी उपलब्ध होती है– हस्तलिखित प्रतियों में। डेक्कन कॉलेज के हस्तलेख में यह पूरी व्याख्या उपलब्ध होती है और इसका नाम 'ऋज्वर्था' दिया गया है। इस हस्तलेख का लिपिकाल शक सम्वत् 1562 (1640 ई0) है। यह वृत्ति लगभग 17वीं शताब्दी का है।

भाष्य

ऋक्प्रातिशाख्य पर उवट का भाष्य अत्यन्त प्रसिद्ध है। ये उवट शुक्लयजुर्वेद के भाष्यकर्ता भी हैं। इस भाष्य की रचना इन्होंने अवन्ती (उज्जयिनी) में निवास कर राजा भोग के शासनकाल में की। फलस्वरूप इस भाष्य का रचनाकाल 11वीं शती का मध्यकाल है। इस प्रकार यह भाष्य, वृत्ति से लगभग चार सौ वर्ष पहले निर्मित हुआ था। अभी तक आप सभी ने ऋक्प्रातिशाख्य का परिचय, विषयवस्तु, वृत्ति और भाष्य का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया है। आइए अब हम अधोलिखित अभ्यास प्रश्नों के माध्यम से अपने पढ़े हुए विषय को जाँचने का प्रयास करते हैं।

अभ्यास प्रश्न–1

1. ऋक्प्रातिशाख्य किस वेद से सम्बन्धित है ?
   (क) ऋग्वेद (ख) यजुर्वेद
   (ग) सामवेद (घ) अथर्ववेद
2. ऋक्प्रातिशाख्य के रचयिता कौन हैं ?
   (क) वसिष्ठ (ख) शौनक
   (ग) उवट (घ) विष्णुमित्र
3. ऋक्प्रातिशाख्य पर किसकी वृत्ति है ?
   (क) उवट (ख) विष्णुमित्र
   (ग) शौनक (घ) कात्यायन
4. ऋक्प्रातिशाख्य में कितने पटल हैं ?
   (क) 10 (ख) 14
   (ग) 18 (घ) 20

5. ऋक्प्रातिशाख्य का दूसरा नाम क्या है?

(क) पार्षद (ख) सूत्र

(ग) संहिता (घ) वृत्ति

6. 'प्रातिशाख्य एक–एक शाखा से सम्बन्धित है'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

7. 'पदपाठ से संहितापाठ के नियम प्रातिशाख्यों में प्राप्त होते हैं'– यह कथन है ?

(क) सत्य (ख) असत्य

8. 'मन्त्रों के बाह्य स्वरूप ज्ञान के लिए प्रातिशाख्य उपयोगी हैं'– यह कथन है ?

(क) सत्य (ख) असत्य

9. 'प्राचीन–काल में आयोजित सभाओं में ध्वनि–विज्ञान' और व्याकरण के नियमों पर विचार होता था'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

10. 'किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के चारों ओर बैठने वाले सहायक व्यक्तियों के लिए 'पार्षद' शब्द प्रयुक्त है'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

11. प्रातिशाख्यों को पार्षद या ..... कहते हैं?

(क) पारिषद–सूत्र (ख) व्याकरण–सूत्र

(ग) वृत्ति (घ) भाष्य

12. प्रातिशाख्यों को वेदों का सहायक होने के कारण ..... कहा जा सकता है?

(क) वृत्ति (ख) सूत्र

(ग) पार्षद (घ) व्याख्या

13. प्रथम पटल का नाम ..... है?

(क) संहिता (ख) स्वर

(ग) संज्ञा (घ) क्रम

14. तीसरे पटल का नाम ..... है?

(क) संज्ञा (ख) स्वर

(ग) क्रम (घ) सन्धि

15. उवट भाष्य का रचनाकाल ..... का मध्यकाल है?

(क) 11वीं शती (ख) 14वीं शती

(ग) 15वीं शती (घ) 17वीं शती

1.2.1 शिक्षा–पटल का प्रतिपाद्य विषय

अभी तक आप सभी ने ऋक्प्रातिशाख्य के परिचय एवं प्रतिपाद्य विषयों को भली–भाँति जान लिया है। आपके पाठ्यक्रम के अनुसार ऋक्प्रातिशाख्य के **शिक्षा–पटल** को आप

सभी को पढ़ना है। ऋक्प्रातिशाख्य के **तेरहवें पटल** में **शिक्षा पटल** का उल्लेख है। यहाँ शिक्षा पटल में किन–किन सूत्रों का विवेचन किया जायेगा उसके संक्षिप्त विषयवस्तु का क्रमवार विवरण आप सभी के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है–

ऋक्प्रातिशाख्य के तेरहवें पटल में वर्णित शिक्षा पटल–

1. वर्णों की उत्पत्ति में बाह्य प्रयत्न।
2. वर्णों की उत्पत्ति में आभ्यन्तर प्रयत्न।
3. वर्णों की उत्पत्ति का सामान्य वर्णन।
4. वर्ण शाश्वत (नित्य) हैं, इस पर आचार्यों के विचार।
5. सघोष, अनुनासिक और सोष्म वर्णों की उत्पत्ति के विषय में मतभेद।
6. अनुनासिक वर्णों के उच्चारण प्रकार।
7. वर्णों के गुणों का उपसंहार।
8. ऋक्षु पद के मध्य में दीर्घपूर्व का, अनुस्वार का, ह्रस्वपूर्व का और अनुस्वार की उच्चारण व्यवस्था।
9. समापाद्य का स्वरूप।
10. सोपाधिक अनुस्वार के उच्चारण काल के विषय में मत का प्रतिपादन।
11. ऋकार, ॠकार, ऌकार का स्वरूप।
12. अनुस्वार के उच्चारण के विषय में व्याडि का विचार।
13. सन्ध्यक्षर वर्णों का स्वरूप।
14. वाणी के मन्द्र आदि तीन स्थान।
15. सात यम और उनके स्वरूप।
16. वाणी के व्यवहार का निरूपण।

इस प्रकार शिक्षा–पटल में इन सभी विषयवस्तुओं का वर्णन देखने को मिलता है।

1.2.2 शिक्षा–पटल के सूत्रों का भाष्यानुसार अनुवाद

वायुः प्राणः कोष्ठ्यमनुप्रदानं कण्ठस्य खे विवृते संवृते वा।

आपद्यते श्वासतां नादतः वा वक्त्रीहायाम्।। 1 ।।

जब वक्ता बोलने की चेष्टा करता है तो फेफड़े से फेंकी हुई प्राण–रूप वायु, कण्ठ के छेद (स्वर–यन्त्र) के (मुख्यतः) खुले हुए (विवृत) अथवा (मुख्यतः) बन्द होने (संवृत) के अनुसार, 'श्वास' अथवा नाद' हो जाती है।

शरीर में विद्यमान रहने वाली तथा पृथक्–पृथक् कार्य करने वाली जो ये पाँच वायु प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान हैं उनमें से प्राणवायु नाभि से ऊपर व्याप्त रहकर मुख में विचरण करती है। नाभि के नीचे मलाशय तथा मूत्राशय में अपान (वायु विद्यमान रहती है)। फैलाने वाली, सिकोड़ने वाली, ऊपर को फेंकने वाली, नीचे को फेंकने वाली और सामान्य गति करने वाली व्यान (वायु है)। उदान (वायु) कर्मप्रवृत्तियों में बल प्रदान करती है। समान (वायु) सब क्रियाओं में साम्य रखती है।

इस प्रकार वाणी को उत्पन्न करने वाली वायु को कुछ आचार्य प्राण मानते हैं। दूसरे (आचार्य) (वाणी के उत्पादन में उद्युक्त वायु को) उदान मानते हैं–

प्राणियों के शरीर में ऊर्ध्वकर्म स्वरूप सभी क्रियाओं को उत्पन्न करती हुई जो वायु मुख से लेकर आगे ब्रह्मरन्ध्र तक विद्यमान रहती है; नाभि, हृदय, सिर में जाती हुई, विभिन्न अङ्गों से संयुक्त होकर, कण्ठ, तालु, ओष्ठ, दाँतों से प्रयत्नपूर्वक प्रेरित हुई प्राणियों के ज्ञान के लिए 'ह्रस्व' 'दीर्घ', 'प्लुत' वर्णों को, स्निग्ध, रूक्ष, 'उदात्त', 'अनुदात्त', 'स्वरित' और कम्पित, समान, विकीर्ण, संवृत और विवृत (वर्णों) को (उत्पन्न करती है); अतः वह (वायु) उदान कहलाती है।

उभयं वान्तरोभौ।। 2 ।।

दोनों (विवृत और संवृत) के मध्य में होने पर (वायु) दोनों (श्वास और नाद) हो जाती है।

ता वर्णानां प्रकृतयो भवन्ति।। 3 ।।

ये ('श्वास', 'नाद' और दोनों का मेल) वर्णों के मूल–कारण (प्रकृति) हैं।

श्वासोऽघोषाणाम्।। 4 ।।

'श्वास' 'अघोष' (वर्णों) का मूल–कारण (प्रकृति) है।

इतरेषां तु नादः।। 5 ।।

'नाद' अन्य (वर्णों) का (मूल कारण है)।

(क) अर्थात् जब स्वर–यन्त्र का मुख न तो पूर्ण रूप से खुला होता है और न बन्द रहता है तो उस अवस्था में प्राणवायु 'श्वास' और 'नाद' दोनों हो जाती है।

सोष्मोष्मणां घोषिणां श्वासनादौ।। 6 ।।

'सघोष' 'सोष्म' (वर्णों) (=घ, झ, ढ, ध, भ) और 'सघोष' 'ऊष्म' (वर्ण) (=ह) (का मूल–कारण) 'श्वास' और 'नाद' दोनों है।

'अघोष' (वर्णों) का मूल–कारण ('अनुप्रदान') 'श्वास' है। ह और ('वर्ण') के चतुर्थ (वर्णों) का मूल–कारण ('अनुप्रदान') दोनों ('श्वास' = और 'नाद') है। अवशिष्ट सब (वर्णों) का मूल–कारण ('अनुप्रदान') 'नाद' है– यह जानना चाहिए।

तेषां स्थानं प्रति नादात्तदुक्तम्।। 7 ।।

जहाँ तक उन ('श्वास', 'नाद' और दोनों) के रहने के समय का प्रश्न है वह तो 'नाद' (के रहने के समय) से ही कहा जा चुका है।

तद्विशेषः करणम्।। 8 ।।

इन (वर्णों) की एक विशेषता 'आभ्यन्तर प्रयत्न' (करण) है।

स्पृष्टमस्थितम्।। 9 ।।

('स्पर्श' वर्णों का) अल्पकालीन 'स्पृष्ट' ('आभ्यन्तर प्रयत्न' = 'करण') (होता है)।

दुस्पृष्टं तु प्राग्घकाराच्चतुर्णाम्।। 10 ।।

हकार से पहले वाले चार (वर्णों = य, र, ल, व) का ('आभ्यन्तर प्रयत्न'='करण') 'ईषत्स्पृष्ट' ('दुःस्पृष्ट') (होता है)।

वर्णोत्पत्ति के लिए की जाने वाली क्रिया को 'प्रयत्न' कहते हैं। 'प्रयत्न' के दो भेद हैं– (1) बाह्य और (2) आभ्यन्तर। 'आभ्यन्तर प्रयत्न' को 'आस्य प्रयत्न', 'करण' या 'प्रदान' भी कहते हैं। जो प्रयत्न मुख (आस्य) के भीतर होते हैं उन्हें 'आभ्यन्तर प्रयत्न' कहते हैं।

'स्पृष्ट' प्रयत्न में मुख के दो उच्चारणावयव एक दूसरे का स्पर्श करके वायु को पूर्ण रूप से रोक देते हैं और फिर तुरन्त ही एक दूसरे से पृथक् होकर वायु को बाहर जाने देते हैं। दो उच्चारणावयवों के स्पर्श के कारण ही इसे 'स्पृष्ट' 'प्रयत्न' कहते हैं।

स्वरानुस्वारोष्मणामस्पृष्टं स्थितम्।। 11 ।।

'स्वर, 'अनुस्वार' और 'ऊष्म' (–वर्णों) का ('आभ्यन्तर प्रयत्न'='करण') 'स्थित' 'अस्पृष्ट' होता है।

नैके कण्ठथस्य स्थितमाहुरूष्मणः।। 12 ।।

कतिपय (आचार्य) 'कण्ठस्थ' 'ऊष्म' (–वर्णों) (ह, अः) का ('आभ्यन्तर प्रयत्न'='करण') 'स्थित' ('अस्पृष्ट') नहीं मानते हैं।

क) इस 'प्रयत्न' में मुख के दो उच्चारणावयव न तो 'स्पर्श' वर्णों के समान एक दूसरे का पूर्ण स्पर्श ही करते हैं और न 'स्वर' वर्णों के समान एक दूसरे से दूर ही रहते हैं। इसमें उच्चारणावयवों का थोड़ा–सा स्पर्श होता है। उदाहरण के लिए 'य' का उच्चारण करने के लिए जिह्वा के अग्रभाग को कठोर तालु की ओर ले जाते हैं किन्तु पूर्ण स्पर्श नहीं करते हैं। उसी प्रकार 'व' का उच्चारण करने के लिए दोनों ओष्ठ एक दूसरे के निकट आ जाते हैं किन्तु एक दूसरे का पूर्ण स्पर्श नहीं करते हैं।

ख) इस 'प्रयत्न' में (1) मुख के उच्चारणावयवों का स्पर्श नहीं होता और (2) उच्चारणावयव स्थिति (निष्क्रिय) रहते हैं।

एके वर्णाञ्छाश्वतिकान्न कार्यान्।। 14 ।।

कतिपय (आचार्य) वर्णों को नित्य (शाश्वतिक) (मानते हैं), अनित्य (कार्य) नहीं।

सोष्मतां च सोष्मणामूष्मणाहुः सस्थानेन।। 16 ।।

(ये आचार्य) 'सोष्म' (व्यञ्जनों) की 'सोष्मता' को भी समान 'स्थान' वाले 'ऊष्म' (–वर्ण) से (उत्पन्न); बतलाते हैं।

क) इसका तात्पर्य यह है कि 'सघोष' वर्णों में जो 'घोष' है वह 'अ' ध्वनि के कारण है। प्रतीत होता है कि इन आचार्यों के अनुसार 'अ' शुद्ध 'घोष' है जो या तो अ–वर्ण के रूप में अपना स्वतन्त्र कार्य करती है या 'सघोष' वर्णों को अपेक्षित 'घोष' प्रदान करती है।

(ख) इन आचार्यों के अनुसार 'अनुस्वार' शुद्ध 'नासिक्य' ध्वनि है जो सभी 'अनुनासिक' वर्णों का आधार है। 'अनुनासिक' वर्णों में जो 'घोष' है वह 'अनुस्वार' के कारण ही है।

घोषिणां घोषिणैव।। 17 ।।

'सघोष' ('सोष्म'–वर्णों) की ('सोष्मता' को) सघोष' ('ऊष्म'–वर्ण=हकार) से ही (बतलाते

हैं)।

रक्तो वचनो मुखनासिकाभ्याम्।। 20 ।।

'अनुनासिक' ('रक्त') का उच्चारण मुख और नासिका–दोनों–से होता है।

(मुखनासिकाभ्याम्=) मुख और नासिका से; (वचनः=) जिसका उच्चारण होता है; उसे; रक्तः='अनुनासिक'; जानना चाहिए। (जैसे) ङ, ऋ, ण, न, म। (उदाहरण) ''सचाँ इन्द्रः''; ''अस्माँअस्माँ इत्''; ''अभीशूँरिव''; ''नृँ प्रणेत्रम्।'' 'अनुनासिक' की 'रक्त' संज्ञा है''– इस (सूत्र) से ही यह सिद्ध है।

तद्वर्णात्मगुणशास्त्रमाहुः।। 21 ।।

यह वर्णों के गुणों का शासन है– यह कहते हैं।

रेफोऽस्त्यृकारे च परस्य चार्धे।

पूर्वे ह्रसीयाँस्तु न वेतरस्मात्।।

मध्ये सः।। 34 ।।

ऋकार में रेफ होता है। (ऋकार से) परवर्ती ('स्वर'–वर्ण) (=ऋकार) के पहले में (रेफ होता है)। वह (ऋकार का रेफ) अन्य (=ऋकार के रेफ) से अल्पतर (होता है) अथवा (अल्पतर) नहीं (होता है)। वह (ऋकार का रेफ) (ऋकार के) मध्य में (होता है)।

त्रीणि मन्द्रं मध्यममुत्तमं च

स्थानान्याहुः सप्तयमानि वाचः।। 42 ।।

मन्द्र मध्यम और उत्तम–वाणी के ये तीन स्थान हैं जिन्हें (आचार्य लोग) सात यमों वाला कहते हैं।

(क) चारों 'सन्ध्यक्षर' (ए, ओ, ऐ, औ) दो–दो 'स्वर' (–वर्णों) के मिलने से निष्पन्न हुए हैं किन्तु उच्चारण की दृष्टि से 'ए' और 'ओ' 'समानाक्षर' के सदृश ही हैं। प्रातिशाख्य के प्रस्तुत सूत्र से ज्ञात होता है कि प्रातिशाख्य के समय में 'ए' और 'ओ' का उच्चारण 'समानाक्षर' के सदृश होने लगा था। इसमें सन्देह नहीं कि मूलतः 'ए' और 'ओ' 'सन्ध्यक्षर' थे। भाषा–विज्ञान के अध्ययन से पता चलता है कि ए, ओ, ऐ और औ का मूल–उच्चारण क्रमशः अइ, अउ, आइ और आउ होता था।

सप्त स्वरा ये यमास्ते।। 44 ।।

जो सात 'स्वर' (षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, निषाद, संक्षेप में– सा रे गा म प ध नि होते हैं) वे ही 'यम' हैं।

(क) 'मन्द', मध्यम और उत्तम अवस्थाओं में क्रमशः हृदय, कण्ठ और सिर में उच्चारण होता है जैसा कि तैतरीय प्रातिसाख्य 23/8 में कहा गया है– ''उरसि मन्द्रं कण्ठे मध्यमं शिरसि तारम्।'' 'मन्द्र' अवस्था में व्याघ्र की ध्वनि के समान ध्वनि होती है, 'मध्यम' अवस्था में चक्रवाक के कूजने के समान ध्वनि होती है और 'उत्तम' ('तार') अवस्था में मयूर अथवा हंस अथवा कोकिल की ध्वनि के समान ध्वनि होती है।

अभ्यासार्थे द्रुतां वृत्तिं प्रयोगार्थे तु मध्यमाम्।

शिष्याणामुपदेशार्थे कुर्याद् वृत्तिं विलम्बिताम्।। 49 ।।
चाषस्तु वदते मात्रां द्विमात्रां वायसोऽब्रवीत्।
शिखी त्रिमात्रो विज्ञेय एष मात्रापरिग्रहः।। 50।।

(अध्ययन के) अभ्यास के लिए द्रुत 'वृत्ति' का, कर्मानुष्ठान (प्रयोग) के लिए मध्यम ('वृत्ति') का, शिष्यों के उपदेश के लिए विलम्बित ('वृत्ति') का प्रयोग करना चाहिए।

नीलकण्ठ एक मात्र बोलता है, कौवा दो मात्राओं को बोलता है, मोर को तीन मात्राओं को बोलने वाला जानना चाहिए। यह मात्राओं का विवरण है।

यहाँ आपने ऋक्प्रातिशाख्य के शिक्षा पटल के सूत्रों को भली–भाँति समझ लिया है। आइए अब हम सब अभ्यास प्रश्नों के द्वारा अपने पढ़े हुए विषयों को जाँचते हैं।

अभ्यास प्रश्न–2

1. विवृत वायु ..... कहलाती है?
   (क) संवृत (ख) कम्पित
   (ग) श्वास (घ) प्रयत्न
2. संवृत वायु ..... कहलाती है?
   (क) नाद (ख) विवृत
   (ग) संवार (घ) घोष
3. श्वास और नाद दोनों वर्णों का ..... कारण है?
   (क) मूल (ख) आवश्यक नहीं
   (ग) संवार (घ) विवार
4. ऊष्म वर्ण ..... है?
   (क) च (ख) क
   (ग) ह (घ) न
5. 'रक्त' का उच्चारण स्थान ..... है।
   (क) मुख और नासिका (ख) तालु और ओष्ठ
   (ग) दन्त और ओष्ठ (घ) दन्त और तालु
6. वक्ता के बोलने के समय कण्ठ के खुले द्वार को क्या कहते हैं?
   (क) संवृत (ख) विवृत
   (ग) घोष (घ) अघोष
7. रक्त वर्ण कौन–कौन से हैं?
   (क) क, ख, ग, घ (ख) च, छ, ज, झ
   (ग) ङ, ञ, ण, न, म (घ) ट, ठ, ड, ढ
8. ऋक्प्रातिशाख्य के शिक्षा पटल में वाणी के कितने स्थान हैं?
   (क) 3 (ख) 7
   (ग) 5 (घ) 9
9. ऋक्प्रातिशाख्य के शिक्षा–पटल के अनुसार 'यम' कितने हैं?
   (क) 7 (ख) 9
   (ग) 11 (घ) 13

10. सन्ध्यक्षर वर्ण कौन है?
    (क) ऐ और औ (ख) क और ग
    (ग) च और ज (घ) ट और ड
11. 'यम स्वरों से पृथक् होते हैं'– यह कथन है?
    (क) सत्य (ख) असत्य
12. 'वाणी की तीन वृत्तियाँ होती हैं'– यह कथन है?
    (क) सत्य (ख) असत्य
13. 'अध्ययन के अभ्यास के लिए 'द्रुत वृत्ति' है– यह कथन है?
    (क) सत्य (ख) असत्य
14. कर्मानुष्ठान के लिए 'मध्यम वृत्ति' है– यह कथन है?
    (क) सत्य (ख) असत्य
15. 'प्रत्येक वृत्ति में मात्रा अधिक हो जाती है'– यह कथन है?
    (क) सत्य (ख) असत्य

1.3 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत आप सभी ने ऋक्प्रातिशाख्य के सामान्य परिचय के साथ शिक्षा–पटल से सम्बन्धित वर्ण और वर्ण व्यवहार को भली–भाँति समझ लिया है। ऋक्प्रातिशाख्य ऋग्वेद से सम्बन्धित शिक्षा ग्रन्थ है। जैसा कि आप सभी यह जान चुके हैं कि वैदिक साहित्य में शिक्षा ग्रन्थों की विशाल परम्परा रही है– पाणिनीय–शिक्षा, याज्ञवल्क्य–शिक्षा, व्यास–शिक्षा, भारद्वाज–शिक्षा, कात्यायनी–शिक्षा इत्यादि। शिक्षा ग्रन्थों के होने के बाद भी वेद की उन–उन सम्बन्धित शाखाओं के स्वरूप और नियमों को जानने के लिए शिक्षा ग्रन्थों से विशिष्ट रूप धारण करने वाले प्रातिशाख्यों का निर्माण किया गया। वैदिक शाखाओं पर जो विशेष नियम बनाये गये वह आचार्यों द्वारा सभा में की गई बौद्धिक चर्चा का परिणाम रही है। जैसा कि आप जानते हैं कि शिक्षा वेदाङ्ग वेदपुरुष की घ्राण (नाक) कही गई है। वेद को भली–भाँति जानने के लिए शिक्षा का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। इन प्रातिशाख्यों को इन शिक्षा ग्रन्थों के अन्तर्गत ही स्थान प्राप्त है। इसीलिए आप देख रहे हैं कि– वेद के अङ्ग छः हैं– (1) शिक्षा और प्रातिशाख्य, (2) शिल्प, (3) व्याकरण, (4) निरुक्त, (5) छन्द एवं (6) ज्योतिष।

जैसा कि आप सभी इस इकाई में पढ़ चुके हैं कि प्रातिशाख्य वेद की शाखा विशेष से सम्बन्धित हैं। ऋक्प्रातिशाख्य ऋग्वेद की सम्पूर्ण रूप से उपलब्ध शाखा, शाकल शाखा से सम्बन्धित है। ऋग्वेद के स्वरूप को बतलाने के ऋक्प्रातिशाख्य के 18 पटलों में विशेष नियमों का निर्माण आचार्य शौनक ने किया है। आपने इस इकाई में शिक्षा–पटल के अन्तर्गत वर्णों की व्यवस्था, स्वरूप से लेकर वर्णों के व्यवहार तक का विस्तृत अध्ययन किया। आप सभी इस इकाई के अध्ययन कर लेने के बाद इससे सम्बन्धित विस्तृत प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ हो सकेंगे।

1.4 शब्दावली

पटल – 'अध्याय' विशेष को 'पटल' कहा गया है।

प्रयत्न – प्रयत्न दो हैं आभ्यन्तर और बाह्य। प्रयत्न का सामान्य अर्थ वर्णों के

उच्चारण में लगने वाला बल।

विवृत – इसका अर्थ है– खुलना।

संवृत – इसका अर्थ है– बन्द होना।

ऊष्म – इसका अर्थ है– जिस वर्ण के उच्चारण में अधिक ऊष्मा या ऊर्जा की आवश्यकता हो, उसे ऊष्म वर्ण कहते हैं। जैसे– ह वर्ण।

वृत्ति – इसका अर्थ है– व्यवहार। वर्णों का व्यवहार।

द्रुत – यह गति विशेष है अर्थात् 'तेज गति'।

विलम्बित – धीमी गति।

मन्द्र – मध्य गति। न बहुत अधिक तेज न बहुत अधिक धीमी।

1.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1– 1 क, 2 ख, 3 ख, 4 ग, 5 क, 6 क 7 क, 8 क, 9 क, 10 क, 11 क, 12 ग, 13 ग, 14 ख, 15 क।

अभ्यास प्रश्न 2– 1 ग, 2 क, 3 क, 4 ग, 5 क, 6 ख, 7 ग, 8 क, 9 क, 10 क, 11 क, 12 क, 13 क, 14 क, 15 क।

1.6 सन्दर्भ–ग्रन्थ

1. ऋग्वेद–प्रातिशाख्य – (अन.) डॉ0 वीरेन्द्र कुमार वर्मा, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, पुनर्मुद्रित संस्करण–2016।
2. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति – पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान 37 बी0 रवीन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी, पञ्चम संस्करण, 1998 ई0।
3. वैदिक साहित्य और संस्कृति का स्वरूप – डॉ. ओमप्रकाश पाण्डेय, विश्व प्रकाशन, संस्करण 1994 ई0।
4. वैदिक साहित्य का इतिहास – वेदाचार्य डॉ. रघुवीर वेदालंकार, चौखम्भा ओरियन्टालिया, दिल्ली प्रकाशन
5. वैदिक वाङ्मय का इतिहास (तीन भागों में) – पंडित भगवद्दत्त, श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट–अमृतसर, संस्करण द्वितीय, सम्वत् 2013।

1.7 बोध–प्रश्न

1. वैदिक–साहित्य में प्रातिशाख्य का महत्त्व बतलाइए।
2. ऋक्प्रातिशाख्य का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
3. ऋक्प्रातिशाख्य के शिक्षा पटल के प्रतिपाद्य विषय का विश्लेषण कीजिए।
4. श्वास और नाद पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
5. यम क्या हैं? इसका संक्षेप में वर्णन कीजिए।

इकाई 2 प्रातिशाख्यों के अनुसार वेदाध्ययन प्रक्रिया

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 प्रातिशाख्य का परिचय

2.2.1 प्रमुख प्रातिशाख्य ग्रन्थ

2.2.2 प्रातिशाख्यों के अनुसार वेदाध्ययन प्रक्रिया

2.3 सारांश

2.4 शब्दावली

2.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.6 सन्दर्भ–ग्रन्थ

2.7 बोध–प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप :

- प्रातिशाख्य–साहित्य का परिचय दे सकेंगे।
- प्रमुख प्रातिशाख्य ग्रन्थों की विषयवस्तु का विश्लेषण कर सकेंगे।
- प्रातिशाख्यों के नियमों का उल्लेख कर सकेंगे।
- प्रातिशाख्य शिक्षा ग्रन्थों से किस प्रकार भिन्न हैं? इस विषय का विस्तारपूर्वक प्रतिपादन कर सकेंगे।
- प्रातिशाख्य के महत्त्व का स्पष्ट रूप से वर्णन कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

वेद हमारे भारतीय धर्म के प्रधान पीठ हैं तथा इन्हें अतिशय आदर, सम्मान एवं पवित्रता की दृष्टि से देखा जाता है। यह बात वेद के उदय काल के कुछ ही समय बाद सम्पन्न हो गई। वेदों के अक्षर पवित्र माने जाने लगे और उनका परिवर्तन तथा स्वरूप दोनों के महान् अर्थ समझे जाते थे यदि उनके उच्चारण या उनके अर्थ ज्ञान में कोई भी त्रुटि होती थी तो उसे बड़ा ही अनर्थ समझा जाता था। वेद के स्वरूप और उसके अर्थ के संरक्षण के लिए वेदाङ्ग साहित्य का उदय हुआ। जिस प्रकार हम देखते हैं कि वेद जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद हैं और उन वेदों से सम्बन्धित विभिन्न संहिता– शाकल, बाष्कल, शांखायन, आश्वलायन, माण्डूकायन, काण्व, माध्यन्दिन, तैत्तिरीय, मैत्रायणी आदि देखने को मिलती हैं। उसी प्रकार से इन वैदिक–साहित्य का या मन्त्रों का किस प्रकार संरक्षण, संवर्धन हो सके इसके लिए वेदाङ्ग रखे गए। वेदाङ्ग क्या है? इसका उत्तर है– वेदाङ्ग, वेद के अङ्ग कहे गए हैं। जिस प्रकार से पुरुष के अङ्ग हैं जिनसे पुरुष अपने कार्य को सम्पादित करता है जैसे पुरुष के नेत्र, मुख, कान, हाथ, पैर यह सब अङ्ग हैं। उसी तरह से वेदरूपी पुरुष के यह जो छः वेदाङ्ग हैं– शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, निरुक्त एवं ज्योतिष यह सभी के सभी उसके अङ्ग कहे गए हैं। इन अङ्गों के द्वारा उस वेद रूपी पुरुष

को हम भली–भाँति जान पाते हैं। यह छः वेदाङ्ग का नाम और क्रम मुण्डकोपनिषद् में सबसे पहले मिलता है उसमें इस क्रम से छः वेदाङ्गों के नाम का उल्लेख किया गया है– शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष। **प्रातिशाख्य को शिक्षा के अन्तर्गत रखा गया है। क्योंकि शिक्षा ग्रन्थ बाद में रचित हैं और उनसे पहले प्रातिशाख्यों की रचना हुई, अतः प्रातिशाख्यों में उन नियमों का विवेचन हुआ जिनका शिक्षा ग्रन्थों में नहीं हो पाया था। उन नियमों को आचार्यों ने परिषद् बनाकर उन नियमों को एकमत से बनाया और उनसे वेद का संरक्षण, संवर्धन होता आ रहा है।**

इस इकाई के अन्तर्गत आप सभी विस्तारपूर्वक प्रातिशाख्यों के द्वारा वेदाध्ययन प्रक्रिया को जानेंगे।

2.2 प्रातिशाख्य का परिचय

'प्रातिशाख्य' वेद का एक लक्षण ग्रन्थ है। यह एक ऐसा ग्रन्थ है जिसके द्वारा वेद के बाह्य स्वरूप का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। वेद अभ्यास की प्रक्रिया को 5 रूपों में देखा जाता है– अध्ययन, विचार, अभ्यास, जप और अध्यापन। प्रातिशाख्य में इन पाँचों प्रक्रियाओं का विस्तार से वर्णन किया गया है। अध्ययन का तात्पर्य है– वेदों का श्रवण करना। विचार का तात्पर्य होता है– उनका मनन करना। विचार दो प्रकार के माने गए हैं– पहला मन्त्र का अर्थ रूप में विचार करना और दूसरा लक्षण रूप में विचार करना। इस विषय में आचार्य यास्क ने निरुक्त (1/6) में कहा है–

स्थाणुरयं भारहरः किलाभूत् अधीत्य वेदं न विजानाति योर्थम्।
योर्थम् इत् सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा।।

इसका अर्थ यह हुआ कि जो व्यक्ति वेद को पढ़कर उसका अर्थ नहीं जानता है, वह भार ढोने के समान अथवा ठूठ वृक्ष के समान है और जो अर्थ को जानता है वह सभी कल्याण को प्राप्त कर लेता है तथा ज्ञान से पाप को नष्ट कर स्वर्ग को प्राप्त कर लेता है। इसलिए निरुक्त में मन्त्र के अर्थ का विचार करने की बात पर जोर दिया गया है। यास्क आगे कहते हैं कि–

लक्षणं यो न वेत्त्यृक्षु न कर्मफलभाग् भवेत्।
लक्षणज्ञो हि मन्त्राणां सकलं भद्रमश्नुते।।

अर्थात्– जो व्यक्ति लक्षण द्वारा मन्त्रों के बाह्य स्वरूप को नहीं जानता, वह कर्मफल को नहीं प्राप्त कर पाता। मन्त्रों के लक्षण को जानने वाला व्यक्ति ही समस्त कल्याण को प्राप्त करता है। इसलिए लक्षण का वर्णन पहले किया गया है और उसके बाद उस मन्त्र का अर्थ जानना चाहिए। आगे भी–

स्वरो वर्णोऽक्षरं मात्रा दैवं योगार्षमेव च।
मन्त्रं जिज्ञासमानेन वेदितव्यं पदे पदे।।

मन्त्र को जानने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को चाहिए कि वह सबसे पहले स्वर, वर्ण, अक्षर, मात्रा, देवता, विनियोग और ऋषि का ज्ञान प्राप्त कर ले। इन्हीं पदार्थों के ज्ञान के लिए प्रातिशाख्य जैसे विशेष ग्रन्थ का निर्माण किया गया। प्रातिशाख्य के अध्ययन का मुख्य फल है कि वह मन्त्रों का लक्षण ज्ञान कराता है। प्रातिशाख्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उनमें किसी एक शाखा के नियमों का निर्देश नहीं है बल्कि उनमें

एक–एक चरण की शाखाओं के नियमों का उल्लेख किया गया है और प्रत्येक 'शाखा' के लिए 'चरण' शब्द का प्रयोग किया गया है जो आज 'शाखा' के नाम से प्रसिद्ध हैं। प्रातिशाख्य के विषय में उवट द्वारा रचित ऋक्प्रातिशाख्य के भाष्य में यह पद्य प्राप्त होता है–

शिक्षा छन्दो व्याकरणैः सामान्येनोक्तलक्षणम्।
तदेवमिह शाखायामिति शास्त्र–प्रयोजनम्।।

अर्थात्– शिक्षा, छन्द और व्याकरण के द्वारा तो सामान्य लक्षण कथित है, लेकिन प्रातिशाख्य एक ऐसी रचना है जिसके द्वारा वेद की शाखाओं के बारे में विशेष बात बतलाई गई है और इस प्रातिशाख्य शास्त्र के अध्ययन के बाद हम उस वेद की शाखा को भली–भाँति जान पाते हैं।

प्रातिशाख्यों के सम्बन्ध में दो पक्ष देखने को मिलते हैं। एक पक्ष के अनुसार प्रातिशाख्य इन तीनों वेदाङ्गों– शिक्षा, छन्द, व्याकरण के नियमों की विशेष रूप में व्यवस्था करता है। दूसरा पक्ष यह है कि प्रातिशाख्यों की अपनी स्वतन्त्र सत्ता है। शिक्षा, छन्द, व्याकरण में जिन नियमों का विधान किया गया है, उनसे अलग या विशेष नियमों का विधान इस शास्त्र में किया गया है। ऐसे विषय हैं– क्रम, क्रम हेतु, पारायण आदि। उच्चारण, स्वर–विधान, एक पद का दूसरे पद के साथ सन्निहित होने पर सन्धि, स्थान–स्थान पर ह्रस्व का दीर्घ विधान आदि संहिताओं के पाठ से सम्बन्ध रखने वाले समस्त विषयों का इन ग्रन्थों में सुन्दर विवेचन किया गया है। संहिता–पाठ के पद–पाठ के रूप में परिवर्तित होने पर जिन नियमों की आवश्यकता होती है उन सबका विवरण यहाँ बड़ी ही व्यवस्था के साथ किया गया है। ग्रन्थों की रचना बड़ी वैज्ञानिक रीति से की गई है। इनके रचयिताओं ने उन–उन संहिता से उन मन्त्रों को उद्धृत किया है जिसमें सकार तथा नकार मूर्धन्य रूप को प्राप्त कर लेता है। दीर्घकरण के समस्त उदाहरण विशेष समीक्षा के साथ प्रस्तुत किए गए हैं। किसी–किसी प्रातिशाख्य में वैदिक छन्दों की भी उचित रूप से समीक्षा की गयी है।

सृष्टि के प्रारम्भ में वैदिक संहिताओं का स्वरूप तथा पाठ उसी प्रकार का था जिस प्रकार वह आजकल उपलब्ध हो रहा है। हम देख सकते हैं कि हजारों वर्ष बीत गए परन्तु यह संहितायें अपने उसी रूप में आज भी चली आ रही हैं। उनका पाठ जैसे पहले हुआ करता था वैसे ही आज भी होता आ रहा है। इसका मुख्य कारण है कि प्रातिशाख्यों में इन संहिताओं से सम्बन्धित नियमों का विधान। शौनक ने ऋक्प्रातिशाख्य में इतने सूक्ष्म नियम बताए हैं जिनके आधार पर निःसन्देह हम यह कह सकते हैं कि ऋग्वेद के पाठ अपने मूल रूप में, अक्षर–अक्षर, स्वर–स्वर अपने रचनाकाल से आज तक यथावत बने हुए हैं।

आप सभी ने इस इकाई के अन्तर्गत प्रातिशाख्य के सामान्य परिचय को जान लिया है। आइए अब हम अधोलिखित अभ्यास प्रश्नों के माध्यम से अपने पढ़े हुए विषय को जाँचने का प्रयास करते हैं।

अभ्यास प्रश्न– 1

1. प्रातिशाख्य वेद का एक .....ग्रन्थ है?

   (क) वृत्ति (ख) परिभाषा

   (ग) संहिता (घ) लक्षण

2. वेद अध्ययन का तात्पर्य है, वेद का.....करना?
   (क) विचार (ख) श्रवण
   (ग) तर्क (घ) समीक्षा
3. वेद का अर्थ न जानने वाला.....ढोने के समान है?
   (क) मन्त्र (ख) भार
   (ग) नियम (घ) समय
4. आचार्य यास्क द्वारा रचित ग्रन्थ.....है?
   (क) निरुक्त (ख) भाष्य
   (ग) वृत्ति (घ) सूत्र
5. ज्ञान से पाप को नष्ट कर.....को प्राप्त कर लेता है?
   (क) स्वर्ग
   (ख) मोक्ष
   (ग) ऐश्वर्य
   (घ) सिद्धि
6. वेदाभ्यास प्रक्रिया कितने प्रकार की है?
   (क) 5
   (ख) 7
   (ग) 9
   (घ) 11
7. वेदाङ्ग कितने हैं?
   (क) 6
   (ख) 8
   (ग) 10
   (घ) 12
8. 'चरण' का दूसरा नाम क्या है?
   (क) शाखा (ख) सूत्र
   (ग) सूक्त (घ) अनुवाक
9. प्रातिशाख्यों में किस ग्रन्थ विशेष से सम्बन्धित नियम हैं?
   (क) व्याकरण (ख) संहिता
   (ग) निरुक्त (घ) कल्प
10. एक पद का दूसरे पद के साथ सन्निहित होने को क्या कहते हैं?
    (क) पद (ख) सन्धि
    (ग) स्वर (घ) पाठ
11. 'वैदिक संहिताओं का स्वरूप और पाठ प्राचीनकाल के समान आज भी चल रहा

है'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

12. 'ऋक्प्रातिशाख्य में सूक्ष्म नियम बताये गए हैं'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

13. 'प्रातिशाख्यों में वैदिक छन्दों का भी उचित रूप बताया गया है'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

14. 'प्रातिशाख्यों में संहिताओं से सम्बन्धित उद्धरण दिये गए हैं'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

15. प्रातिशाख्यों की स्वतन्त्र सत्ता है'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

2.2.1 प्रमुख प्रातिशाख्य ग्रन्थ

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद से सम्बन्धित प्रातिशाख्यों को अधोलिखित रेखाचित्र द्वारा देखा जा सकता है–

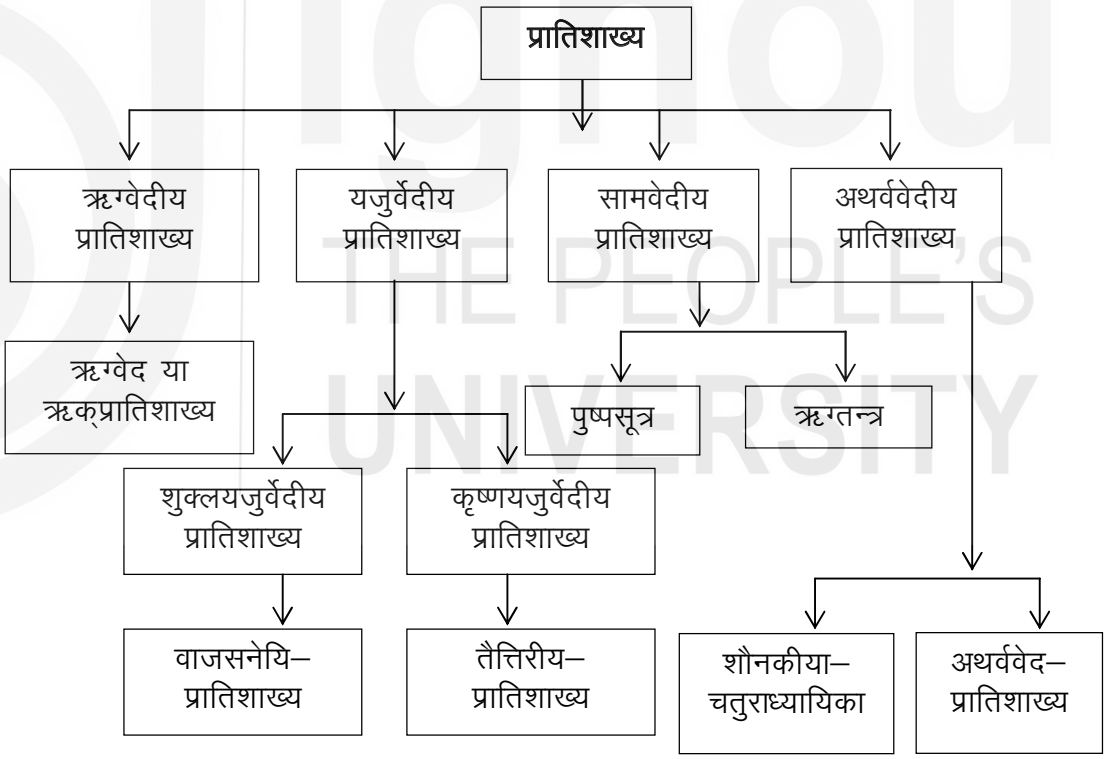

इन सभी प्रातिशाख्यों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

1. **ऋग्वेद– प्रातिशाख्य–**यह ऋक्प्रातिशाख्य के नाम से भी जाना जाता है और आचार्य शौनक द्वारा रचित है। ऋग्वेद–संहिता से सम्बन्धित नियमों का प्रतिपादन करने के कारण इसे 'ऋक्प्रातिशाख्य' के नाम से जाना जाता है। यह प्रातिशाख्य 18 पटलों में विभक्त है। इस पर आचार्य विष्णुमित्र की वृत्ति प्राप्त होती है और आचार्य उवट ने इस पर भाष्य लिखा है।

2. **वाजसनेयि–प्रातिशाख्य** – यह शुक्ल–यजुर्वेद से सम्बन्धित प्रातिशाख्य है। इस प्रातिशाख्य की रचना कात्यायन मुनि ने की। यह कात्यायन, अष्टाध्यायी के वार्तिककार के कात्यायन से भिन्न हैं या वही, इसको लेकर आचार्यों में मतभेद है। इस प्रातिशाख्य में 8 अध्याय हैं। इसमें सूत्रों की संख्या 734 है। कात्यायन प्रातिशाख्य पर 2 भाष्य प्राप्त होते हैं। एक 'मातृवेद' भाष्य, दूसरा– अनन्तभट्ट द्वारा रचित 'पदार्थ प्रकाशक' नामक भाष्य। इस प्रातिशाख्य से सम्बन्धित दो छोटे ग्रन्थ भी प्राप्त होते हैं। जिनके .पर टीकायें भी उपलब्ध होती हैं– प्रतिज्ञासूत्र और भाषिकसूत्र। प्रतिज्ञासूत्र और भाषिकसूत्र को कात्यायन प्रातिशाख्य का परिशिष्ट भी माना गया है।

3) **तैत्तिरीय–प्रातिशाख्य**– यह कृष्ण–यजुर्वेद के तैत्तिरीय–संहिता से सम्बन्धित है। यह प्रातिशाख्य दो प्रश्नों अर्थात खण्डों में विभक्त है। प्रत्येक प्रश्न या खण्ड में 12 अध्याय हैं। इस प्रकार पूरा ग्रन्थ सूत्रात्मक शैली में 24 अध्यायों में विभक्त है। इस पर सबसे प्राचीन भाष्य माहिषेय द्वारा रचित 'पदक्रम सदन' नाम से प्राप्त होता है। सोमयार्य ने 'त्रिभाष्यरत्न' नाम से एवं गोपालयज्वा विरचित 'वैदिकाभरण' दो भाष्य अपेक्षाकृत नवीन प्रतीत होते हैं।

4) **पुष्पसूत्र**–पुष्प ऋषि के द्वारा रचित यह प्रातिशाख्य सामवेद से सम्बन्धित है। यह साम–प्रातिशाख्य गान–संहिता से सम्बन्ध रखता है। इसमें दस प्रपाठक हैं। इसके .पर उपाध्याय अजातशत्रु द्वारा रचित भाष्य प्रकाशित हुआ है। इसमें मुख्य रूप से वेयगान और अरण्यगान के नियम बताए गए हैं। इसमें स्तोभ का भी विवेचन प्राप्त होता है। हरिदत्त रचित 'सामवेदीय सर्वानुक्रमणी' में एक स्थान पर पुष्पसूत्र या फुल्लसूत्र के रचयिता सूत्रकार वररुचि को बताया गया है।

5) **ऋग्तन्त्र**– यह प्रातिशाख्य सामवेद की कौथुम–शाखा से सम्बन्धित है। इस ग्रन्थ की पुस्तिका में यह 'ऋग्तन्त्र व्याकरण' के नाम से निर्देश दिया गया है। पूरा ग्रन्थ सूत्रों में है जिनकी संख्या 280 है जो 5 प्रपाठकों या अध्यायों में विभक्त हैं। इसके रचयिता सुप्रसिद्ध शाकटायन हैं।

6) **शौनकीया चतुरध्यायिका**– यह अथर्ववेद से सम्बन्धित प्रातिशाख्य है। इस प्रातिशाख्य में चार अध्याय हैं। यह अथर्ववेद का सबसे प्राचीन प्राप्त प्रातिशाख्य है।

7) **अथर्ववेद प्रातिशाख्य**– यह प्रातिशाख्य अथर्ववेद से सम्बन्धित कुछ ही विशेष विषयों पर विचार करता है। यह अथर्ववेद का दूसरा प्रातिशाख्य है। इसमें आचार्य शाकल्य को छोड़कर अन्य किसी भी आचार्य का उल्लेख नहीं मिलता है।

2.2.2 प्रातिशाख्यों के अनुसार वेदाध्ययन प्रक्रिया–

वेद के विभिन्न संहिताओं से सम्बन्धित प्रातिशाख्यों में वेद अध्ययन की प्रक्रिया बतलाई गई है। वेद अध्ययन की इस प्रक्रिया को समझने के लिए आइए हम सब एक क्रम से इस विषय को समझते हैं।

1. **वेद अध्ययन में गुरु और शिष्य के बैठने का ढंग–**

पारायणं वर्तयेद् ब्रह्मचारी गुरुः शिष्येभ्यस्तदनुव्रतेभ्यः।
अध्यासीनो दिशमेकां प्रशस्ता प्राचीमुदीचीमपराजितां वा।।

(ऋक्प्रातिशाख्य15/1)

इसके विषय में प्रातिशाख्य में कहा गया है कि गुरु को नियत–इन्द्रिय होकर एक निश्चित दिशा में पूर्व–उत्तर या फिर उत्तर–पूर्व में मुंह करके बैठना चाहिए। इसमें जब तक गुरु अध्यापन की क्रिया करें तब तक वहाँ इस प्रकार नियत–इन्द्रिय हो करके बैठे और जो शिष्य श्रद्धायुक्त हों उन्हीं को अध्यापन कार्य कराए। तात्पर्य यह है कि प्रातिशाख्य का अध्ययन करने के लिए जो शिष्य श्रद्धा नहीं रखते उनको वेद का अध्ययन न करावे।

एकः श्रोता दक्षिणतो निषीदेद् द्वौ वा।।

(ऋक्प्रातिशाख्य15/2)

बैठने की क्रिया में गुरु को उत्तर–पूर्व या पूर्व–उत्तर की ओर बैठने को कहा गया है। इसमें शिष्य जो कि श्रोता रूप में रहता है और गुरु से वेद का अध्ययन कर रहा है, वह गुरु के दाहिनी ओर बैठे। शिष्य एक या दो की संख्या में हैं तो वह गुरु के दाहिनी ओर बैठें।

भूयांसस्तु यथावकाशम्।।

(ऋक्प्रातिशाख्य 15/3)

यदि बहुत सारे शिष्य हैं तो स्थान के अनुसार बैठना चाहिए। अर्थात् जितना स्थान हो उसके अनुसार सभी शिष्य गुरु के ओर मुख करके बैठ जाएं।

2. **शिष्य के द्वारा प्रार्थना–** वेद अध्ययन करने के इच्छुक शिष्य को चाहिए कि वह गुरु के चरणों का स्पर्श करके गुरु से प्रार्थना करे कि हे भगवन् आप हमें पढ़ाइए या हमें वेद का अध्ययन कराइए।

3. **ओंकार की महिमा और उसका उच्चारण–** शिष्य के द्वारा वेद अध्ययन पढ़ने के लिए प्रार्थना किए जाने पर गुरु उत्तर के रूप में सर्वप्रथम ओम का उच्चारण करे।

अध्येतुरध्यापयितुश्च नित्यं स्वर्गद्वारं ब्रह्म वरिष्ठमेतत्।
मुखं स्वाध्यायस्य भवेत्।। (ऋक्प्रातिशाख्य 15/6)

यह एक शब्द प्रधान ब्रह्म, ओंकारात्मक वेद, अध्येता और अध्यापक दोनों के लिए निश्चित ही स्वर्ग का द्वार है। यह सदैव स्वाध्याय के प्रारम्भ में किया जाना चाहिए। वेद का अध्ययन करने से पूर्व सदैव ओंकार का उच्चारण करना चाहिए।

4. वेद अध्ययन में गुरु और शिष्य की परस्पर क्रिया–

अभिक्रान्ते द्वैपदे वाधिके वा।
पूर्वं पदं प्रथमः प्राह शिष्यः।। (ऋक्प्रातिशाख्य 15/10)

वेद का अध्ययन जब गुरु प्रारम्भ करता है तो गुरु 2 पदों के समूह या इससे अधिक का उच्चारण कर लेते हैं तब प्रथम शिष्य गुरु द्वारा उच्चारित प्रथम शब्द का उसी प्रकार से सुनकर के उच्चारण करता है।

निर्वाच्ये तु भो३इति चोदना स्या–
न्निरुक्त ओं भो३इति चाभ्यनुज्ञा।। (ऋक्प्रातिशाख्य 15/10)

यदि बीच में शिष्य को कुछ समझ नहीं आता है तो वह गुरु से इस प्रकार कहे– 'भगवन्' (भो३), इस शब्द से शिष्य उच्चारण करता है। शिष्य को समझाने के लिए गुरु उस पद की व्याख्या करे और जब व्याख्या समाप्त हो जाय तथा जब उस विषय को समझ ले तो पुनः से कहे– 'ठीक है', भगवन् (ओं भो)। इस प्रकार कहकर गुरु से आगे के विषय को पढ़ाने की प्रार्थना करे।

5. गुरु की आज्ञा–

एवं सर्वे प्रश्नशोध्यायमुक्त्वो–
पसंगृह्यातिसृष्टा यथार्थम्।। (ऋक्प्रातिशाख्य 15/22)

इस प्रकार से शिष्य क्रम से प्रश्न करके और अध्याय का उच्चारण करके गुरु के चरणों का स्पर्श करके अपने कार्य में जाने के लिए गुरु की आज्ञा प्राप्त करें और अपने–अपने कार्य पर चले जाएं।

6. वेद अध्ययन प्रक्रिया में विभिन्न आचार्यों का मत–

अथैके प्राहुरनुसंहितं तत्पारायणे प्रवचनं प्रशस्तम्।। (ऋक्प्रातिशाख्य 15/33)

कहीं–कहीं प्रातिशाख्यों में पदपाठ से वेद अध्ययन को श्रेष्ठ बताया गया है और कहीं पर संहिता–पाठ से वेद का अध्ययन श्रेष्ठ बताया गया है। ऋक्प्रातिशाख्य में कुछ आचार्यों का ऐसा विचार है कि वेद का उच्चारण या पारायण अथवा जो प्रवचन है, वह पदपाठ से श्रेष्ठ संहिता–पाठ के अनुसार होता है।

वाजसनेयि–प्रातिशाख्य में वेद अध्ययन की प्रक्रिया के विषय में देखने को मिलता है कि वेद की रक्षा के हेतु सैद्धान्तिक पक्ष वर्ण, स्वर, सन्धि से सम्बन्धित सिद्धान्तों को उल्लिखित करने के साथ–साथ आचार्य कात्यायन ने व्यावहारिक पक्ष वेद अध्ययन की मौखिक परम्परा को भी वाजसनेयि–प्रातिशाख्य में उल्लिखित कर दिया है। वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के पहले अध्याय के 10 सूत्रों में तथा आठवें अध्याय के तीन सूत्रों में वेद अध्ययन विषयक कुछ महत्त्वपूर्ण बातों का प्रतिपादन किया गया है। आठवें अध्याय में वेद अध्ययन के फल को भी बताया गया है। वाजसनेयि–प्रातिशाख्य से वेद अध्ययन के विषय में जो बातें ज्ञात होती हैं वह संक्षेप में इस प्रकार हैं– (1) पाद–शुद्धि अर्थात् पैर की शुद्धता, आचमन इत्यादि के द्वारा पवित्र होकर के वेद का अध्ययन करना चाहिए (वाजसनेयि–प्रातिशाख्य 1/20, 8/27)। (2) शुद्ध स्थान में वेद अध्ययन करना चाहिए (वाजसनेयि–प्रातिशाख्य 1/21, 8/28)। (3) सुखद आसन पर बैठकर वेद अध्ययन करना चाहिए (वाजसनेयि–प्रातिशाख्य 1/22)। (4) हेमन्त ऋतु आने पर रात्रि के चौथे पहर में वेद अध्ययन करना चाहिए (वाजसनेयि–प्रातिशाख्य 1/23)। (5) वेद अध्ययन के प्रारम्भ में ओम् का उच्चारण करना चाहिए (वाजसनेयि–प्रातिशाख्य 1/16)। (6) शूद्र एवं पतित जिस प्रकार न सुने उस प्रकार वेद अध्ययन करना चाहिए (वाजसनेयि–प्रातिशाख्य 8/29)। (7) अध्ययन काल में अध्ययन करने वाले को एक योजन से अधिक पैदल नहीं चलना चाहिए (वाजसनेयि–प्रातिशाख्य 1/24)। (8) अध्ययन करने वाले को मधुर और रसयुक्त भोजन करना चाहिए (वाजसनेयि–प्रातिशाख्य 1/25)। वेद अध्ययन का फल बतलाते हुए आचार्य कात्यायन ने कहा है कि वेदों के अध्ययन एवं अर्थ ज्ञान से मोक्ष, स्वर्ग, यश और दीर्घायु की प्राप्ति होती है। वेद के अध्ययन से, वेद के अध्यापन से, वेद के सुनने से, वेद के वर्णों, अक्षरों, विभक्तियों और पदों के ज्ञान से धर्म होता है।

आप सभी ने इस इकाई के अन्तर्गत प्रातिशाख्यों के अनुसार वेद अध्ययन की प्रक्रिया को समझ लिया है। आइए अब हम अधोलिखित अभ्यास प्रश्नों के माध्यम से अपने पढ़े हुए विषय को जाँचने का प्रयास करते हैं।

अभ्यास प्रश्न– 2

1. वेद अध्ययन कराते समय गुरु को ..... इन्द्रिय होना चाहिए।
   (क) क्रोध युक्त (ख) परामुख
   (ग) असंयत (घ) नियत
2. वेद अध्ययन कराने से पूर्व गुरु को ..... का उच्चारण करना चाहिए।
   (क) सूत्र (ख) ओंकार
   (ग) अथ (घ) इति
3. वेद का अध्ययन कराते समय गुरु को ..... दिशा में बैठना चाहिए।
   (क) पूर्व–दक्षिण (ख) उत्तर–पूर्व
   (ग) दक्षिण (घ) पश्चिम
4. अध्ययन करते समय शिष्य को गुरु के ..... ओर बैठना चाहिए।
   (क) दाहिनी (ख) पृष्ठ
   (ग) परामुख (घ) उच्च स्थान
5. ..... शिष्य, गुरु को वेद अध्ययन के लिए कहे।
   (क) प्रार्थनापूर्वक (ख) हठपूर्वक
   (ग) परामुख (घ) अस्पष्ट
6. ओंकार के साथ वेदाध्ययन करने से किसकी प्राप्ति होती है?
   (क) स्वर्ग (ख) ऐश्वर्य
   (ग) भवन (घ) यमलोक
7. शौनकीया चतुरध्यायिका प्रातिशाख्य किस वेद से है?
   (क) अथर्ववेद (ख) सामवेद
   (ग) ऋग्वेद (घ) यजुर्वेद
8. ऋग्तन्त्र किस वेद से सम्बन्धित है?
   (क) सामवेद (ख) अथर्ववेद
   (ग) ऋग्वेद (घ) यजुर्वेद
9. ऋग्तन्त्र में कितने अध्याय हैं?
   (क) 4 (ख) 5
   (ग) 6 (घ) 7
10. पुष्पसूत्र प्रातिशाख्य किस वेद से सम्बन्धित है?
    (क) ऋग्वेद (ख) सामवेद
    (ग) यजुर्वेद (घ) अथर्ववेद
11. तैत्तिरीय–प्रातिशाख्य कितने प्रश्नों में विभक्त है?

(क) 2 (ख) 4

(ग) 5 (घ) 6

12. पदक्रम–सदन–भाष्य के रचयिता कौन हैं?

(क) शौनक (ख) माहिषेय

(ग) कात्यायन (घ).सोममार्य

13. वैदिकाभरण–भाष्य किसकी रचना है?

(क) कात्यायन (ख) गोपालयज्वा

(ग) सोमयार्य (घ) शौनक

14. वाजसनेयि–प्रातिशाख्य में कितने अध्याय हैं?

(क) 6 (ख) 8

(ग) 10 (घ) 12

15. पदार्थ प्रकाशक–भाष्य किसकी रचना है?

(क) शौनक (ख) अनन्तभट्ट

(ग) कात्यायन (घ) गोपालयज्वा

16. 'वेद अध्ययन करने वाला शिष्य श्रोता रूप में है'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

17. 'शिष्य को अपने कार्य पर जाने से पूर्व गुरु की आज्ञा लेनी चाहिए'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

18. 'शिष्य वेद अध्ययन करते समय विषय समझने के लिए गुरु से 'भोः' का उच्चारण करता है'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

19. 'शिष्य बहुत हों तो स्थान के अनुसार बैठना चाहिए'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

20. 'शिष्य वेद विषय को समझने के बाद 'ओं भो' का उच्चारण करता है'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

2.3 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत आप सभी ने प्रातिशाख्यों के अनुसार वेद के अध्ययन की प्रक्रिया को विस्तारपूर्वक समझ लिया है। इसके अन्तर्गत आपने यह देखा कि प्रातिशाख्य जो कि शिक्षा ग्रन्थों से पूर्व रचे गए थे। इनका मुख्य उद्देश्य वैदिक मन्त्रों की व्यवस्था और उनके शुद्ध उच्चारण और अर्थ ज्ञान से सम्बन्धित है। जैसा कि स्पष्ट है कि यह प्रातिशाख्य किसी एक शाखा के नियमों से नहीं सम्बन्धित है बल्कि प्रत्येक शाखा के नियमों को परिभाषित करते हैं। प्रातिशाख्य वेद मन्त्रों का अर्थ स्पष्ट रूप से बतलाने में सहायता करते हैं। इसमें मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण और उनके अर्थ ज्ञान के लिए छन्द–अनुशासन, स्वर, सन्धि, मात्रा, वर्ण इत्यादि विषयों पर विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। यहाँ पर स्पष्ट है कि प्रातिशाख्य, शिक्षा, छन्द, व्याकरण इन

तीनों विषयों को अपने में समाहित किए हुए हैं जिसके कारण वैदिक मन्त्रों को स्पष्ट रूप से समझने में सहायता प्राप्त होती है। यदि हम देखें तो प्रातिशाख्य ग्रन्थों का दो प्रकार से महत्त्व दिखाई देता है। पहला महत्त्व है कि व्याकरण–शास्त्र के इतिहास के सम्बन्ध में इसमें सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है और दूसरा की वैदिक संहिताओं में जो मन्त्र हैं उन मन्त्रों के पाठ और उनके स्वरूप के विषय में विस्तृत जानकारी होती है। जिस संस्कृत व्याकरण को आज हम देखते हैं वह संस्कृत व्याकरण का मूल आधार यह प्रातिशाख्य ही रहे हैं। प्रातिशाख्य के सूत्रों को आधार स्वरूप में मान करके बाद में शिक्षा ग्रन्थ निर्मित हुए। क्योंकि यदि देखा जाए तो प्राचीनकाल के अनेक व्याकरण आचार्यों के नाम इन प्रातिशाख्य ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से देखने को मिलते हैं।

इस प्रकार इस प्रातिशाख्य के अनुसार वेदाध्ययन की प्रक्रिया का अध्ययन कर लेने के उपरान्त आप सभी इस इकाई से सम्बन्धित विस्तृत प्रश्नों के उत्तर एवं संक्षिप्त टिप्पणी देने में समर्थ हो सकेंगे।

2.4 शब्दावली

- **नियत इन्द्रिय** – इसका तात्पर्य यह है कि वेद का अध्ययन करते समय अपने इन्द्रियों को वश में रखना या ब्रह्मचर्य का पालन करना।
- **श्रवण** – सुनना
- **श्रोता** – सुनने वाला
- **ठूंठ वृक्ष** – ऐसा वृक्ष जिसकी केवल टहनियां हों, फूल–पत्ते न हों।
- **विनियोग** – इसका अर्थ यह है कि– प्रयोग। जैसे– अमुक मन्त्र का उच्चारण अमुक अनुष्ठान में हो।
- **प्रातिशाख्य** – प्रत्येक शाखा।

2.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1– 1 घ, 2 ख, 3 ख, 4 क, 5 क, 6 क, 7 क, 8 क, 9 ख, 10 ख, 11 क, 12 क, 13 क, 14 क, 15 क।

अभ्यास प्रश्न 2– 1 घ, 2 ख, 3 ख, 4 क, 5 क, 6 क, 7 क, 8 क, 9 ख, 10 ख, 11 क, 12 ख, 13 ख, 14 ख, 15 ख, 16 क, 17 क, 18 क, 19 क, 20 क।

2.6 सन्दर्भ–ग्रन्थ

1. ऋग्वेद–प्रातिशाख्य – (अनु.) डॉ. वीरेन्द्र कुमार वर्मा, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, पुनर्मुद्रित संस्करण 2016
2. तैत्तिरीय–प्रातिशाख्य – पण्डित वे. वेङ्कटरामशर्मा, मद्रास विश्वविद्यालय 1930 ई.
3. वाजसनेय–प्रातिशाख्य एक परिशीलन – प्रो. युगल किशोर मिश्र, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, सन् 1997
4. शुक्लयजुर्वेद–प्रातिशाख्य एक परिशीलन – डॉ. उमेश प्रसाद सिंह, कला प्रकाशन, वाराणसी, सन् 1999

2.7 बोध–प्रश्न

1. प्रमुख प्रातिशाख्य ग्रन्थों के विषय में विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
2. वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के प्रतिपाद्य विषयों का विवेचन कीजिए।
3. प्रातिशाख्य की महत्ता शिक्षा–ग्रन्थों से अधिक क्यों है? स्पष्ट कीजिए।
4. अथर्ववेद–प्रातिशाख्य पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
5. पुष्पसूत्र–प्रातिशाख्य पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।
6. प्रातिशाख्यों के अनुसार वेद अध्ययन की प्रक्रिया को समझाइये।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 3 वाजसनेयि प्रातिशाख्य का प्रतिपाद्य, देवता एवं वैशिष्ट्य

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 वाजसनेयि–प्रातिशाख्य

3.2.1 वाजसनेयि–प्रातिशाख्य का प्रतिपाद्य विषय

3.2.2 वाजसनेयि–प्रातिशाख्य का प्रतिपाद्य देवता

3.2.3 वाजसनेयि–प्रातिशाख्य का वैशिष्ट्य

3.3 सारांश

3.4 शब्दावली

3.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.6 सन्दर्भ–ग्रन्थ

3.7 बोध–प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप :

- वाजसनेयि–प्रातिशाख्य का परिचय दे सकेंगे।
- वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के विषयवस्तु का विश्लेषण कर सकेंगे।
- वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के प्रतिपाद्य देवता का उल्लेख कर सकेंगे।
- वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के वैशिष्ट्य का प्रतिपादन कर सकेंगे।
- वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के पदों के गोत्र पर संक्षिप्त टिप्पणी लिख सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

प्रातिशाख्य–शास्त्र महत्त्वपूर्ण होने के साथ–साथ कठिन भी है। विषयवस्तु की विचित्रता और पारिभाषिक शब्दों की उपस्थिति इस ग्रन्थ को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बनाती है। भारतीय जीवन में संहिताओं का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। संहिताओं को पुरुष की रचना नहीं माना गया यह अपौरुषेय हैं तथा उनको अत्यधिक आदर, सम्मान एवं पवित्र दृष्टि से देखा गया है। यह बात संहिताओं के उदय–काल के कुछ ही दिनों बाद सम्पन्न हो गई थी। संहिताओं का एक–एक अक्षर पवित्र माना जाने लगा। उनमें परिवर्तन महान् अनर्थ का कारण समझा जाने लगा। प्राचीन ऋषियों तथा विद्वानों के सामने यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न था कि संहिताओं की रक्षा कैसे की जाए? संहिताओं के दो पक्षों की रक्षा करनी थी। एक ओर तो उनके अभ्यान्तर पक्ष अर्थात् उनके अर्थ की रक्षा करनी थी। एक भय यह था कि– कहीं आगे आने वाली पीढ़ियाँ संहिताओं के अर्थ को भूल ना जाएं, मन्त्रों का साक्षात्कार करने वाले ऋषियों के अभिप्राय कहीं अगम्य न हो जाएं। दूसरी ओर संहिताओं के बाह्य स्वरूप की रक्षा करनी थी। दूसरा यह कि– कहीं पवित्र मन्त्रों के बाह्य स्वरूप में परिवर्तन न हो जाए, कहीं आगे आने

वाली पीढ़ियाँ ऋषियों के पवित्र वाणी के शुद्ध रूप से वंचित न हो जाएं। संहिताओं के अभ्यान्तर पक्ष अर्थात् अर्थ की रक्षा का प्रयत्न निरुक्त के द्वारा किया गया संहिताओं के बाह्य स्वरूप की रक्षा के लिए दो प्रकार के उपायों को अपनाया गया व्यावहारिक उपाय और सैद्धान्तिक उपाय।

व्यावहारिक उपाय– संहिताओं के स्वरूप की रक्षा के लिए अध्ययन–अध्यापन की मौखिक परम्परा का उदय हुआ। पहले गुरु, मन्त्र का उच्चारण स्वयं करते थे और गुरु के उच्चारण को सुनकर शिष्य उच्चारण करते थे। इस क्रम से मन्त्र के उच्चारण को तब तक दोहराया जाता था। जब तक इस मन्त्र को शिष्य पूर्ण रूप से ग्रहण न कर ले। गुरु इस बात का सदैव ध्यान रखते थे कि शिष्य पूरी तरह से शुद्ध उच्चारण को ग्रहण कर रहे हैं या नहीं।

सैद्धान्तिक उपाय– इसमें यह बात आती है कि वेद मन्त्रों के बाह्य स्वरूप में कहीं परिवर्तन न हो जाए इसलिए इसकी सुरक्षा के लिए प्रातिशाख्य–ग्रन्थों, शिक्षा–ग्रन्थों और अनुक्रमणिका–ग्रन्थों की रचना हुई। जिसमें प्रातिशाख्यों का स्थान सर्वोपरि है। इस प्रकार वेदों की रक्षा के लिए प्रातिशाख्य ग्रन्थों का उद्‌भव हुआ।

3.2 वाजसनेयि–प्रातिशाख्य

वाजसनेयि–प्रातिशाख्य महर्षि कात्यायन की रचना है। इसलिए इसको 'कात्यायन प्रातिशाख्य' भी बोलते हैं। लेकिन मुख्यतया जो नाम प्रचलित है वह है– 'वाजसनेयि–प्रातिशाख्य' या 'शुक्लयजुर्वेद–प्रातिशाख्य'। अब यह प्रश्न उठता है कि इसका वास्तव में वाजसनेयि–प्रातिशाख्य नाम क्यों है? आप जानते हैं कि वेदों की शाखाएँ होती हैं। शुक्लयजुर्वेद में 15 शाखाएँ हैं। उसका नाम चरणव्यूह में गिनाया गया है। एक वेद की जो शाखाएँ लगभग समान हैं, उनको 'चरण' शब्द से अभिहित किया जाता है। जैसे– शुक्लयजुर्वेद की इस समय दो समान शाखाएँ मिलती हैं– काण्व–शाखा और माध्यन्दिन–शाखा। शेष जो 13 शाखाएँ हैं, वह उपलब्ध नहीं है। काण्व–शाखा भी वाजसनेयि–चरण के अन्तर्गत है और माध्यन्दिन–शाखा भी वाजसनेयि–चरण के अन्तर्गत है। 'चरण' का अर्थ हुआ 'शाखाओं का समूह'। जब प्रातिशाख्य का अध्ययन करते हैं तो एक बात ध्यान रखनी है कि प्रातिशाख्य–शास्त्र चरण को दृष्टि में रखकर बनाए गए हैं। वाजसनेयि–प्रातिशाख्य सभी शाखाओं पर अपना विधान प्रस्तुत करता है। इसका एक और नाम शुक्लयजुर्वेद–प्रातिशाख्य इसलिए है क्योंकि याज्ञवल्क्य ने भगवान सूर्य की आराधना करके इन 15 शाखाओं को प्राप्त किया था इसलिए यह शुक्लयजुर्वेद है। वैशम्पायन के गुरुकुल में कृष्णयजुर्वेद पढ़ाया जाता था, जिसमें याज्ञवल्क्य भी उनके शिष्य थे। याज्ञवल्क्य का गुरु वैशम्पायन से संवाद हो गया और गुरु ने उनको अपने गुरुकुल से निकाल दिया। याज्ञवल्क्य ने सूर्य की आराधना करके वाजसनेयि–चरण की इन 15 शाखाओं को प्राप्त किया था और उन पर प्रातिशाख्य दिये। शुक्लयजुर्वेद से सम्बन्धित होने के कारण से ही वाजसनेयि–प्रातिशाख्य, इसे 'शुक्लयजुर्वेद–प्रातिशाख्य' भी कहते हैं।

महर्षि कात्यायन की यह रचना है। कात्यायन के विषय में विद्वानों के कई मत हैं। क्योंकि पाणिनि ने व्याकरण ग्रन्थ अष्टाध्यायी का निर्माण किया उसके ऊपर कात्यायन ने वार्तिक लिखा और उसके ऊपर पतञ्जलि द्वारा महाभाष्य लिखा गया (1) कुछ लोग यह कहते हैं कि वार्तिककार कात्यायन ही प्रातिशाख्यकार कात्यायन हैं। यह दोनों रचनाएँ एक ही कात्यायन द्वारा की गई हैं। (2) कुछ लोगों का मत है कि–

दोनों के रचयिता कात्यायन भिन्न–भिन्न हैं। प्रातिशाख्यकार कात्यायन वह पूर्ववर्ती हैं जबकि वार्तिककार कात्यायन परवर्ती हैं। (3) तीसरा मत यह है कि, कात्यायन तो एक ही हैं– प्रातिशाख्य उन्होंने पहले बनाया और वार्तिक बाद में लिखा। अब इन तीनों मतों के ऊपर जब हम विचार करते हैं तो यह समझ में आता है कि वार्तिककार कात्यायन अलग हैं और प्रातिशाख्यकार कात्यायन अलग हैं। क्योंकि पाणिनि ने जो सूत्र बनाए हैं वह **'अल्पाक्षरम् असन्दिग्धम् इत्यादि'** अर्थात्– अल्प अक्षर हों, सन्देह न हों और सारी बात स्पष्ट हो जाए इस सिद्धान्त के अनुगामी हैं। इसलिए पाणिनि के सूत्रों और व्याख्याओं को अत्यन्त वैज्ञानिक माना गया है। इसकी एक भी मात्रा व्यर्थ नहीं है। सहज अनुमान किया जा सकता है कि अगर पाणिनि के सूत्र प्रातिशाख्यकार के सामने रहे होते तो प्रातिशाख्य के सूत्रों में भी उसी शैली का अनुसरण हुआ होता। अर्थात् प्रातिशाख्य के सूत्र सुगठित शैली में बने होते। रचना काल सम्बन्धी विचार करने पर ग्रन्थ के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि प्रातिशाख्यकार कात्यायन पूर्ववर्ती हैं और वार्तिककार कात्यायन बाद के हैं। एक और तथ्य है कि केवल अथर्ववेद–प्रातिशाख्य को छोड़कर रचना–काल में समस्त प्रातिशाख्य पाणिनि से पहले के हैं। प्रातिशाख्य पाणिनि से पूर्व प्रायः चतुर्थ शताब्दी ईसा पूर्व के माने जाते हैं। पाणिनि का समय छठीं या पाँचवीं शताब्दी के मध्य का माना गया है क्योंकि निरुक्तकार यास्क का समय सातवीं शताब्दी का परिगणित है। आचार्य यास्क ने अपने ग्रन्थ में इस शास्त्र के लिए 'प्रातिशाख्य' शब्द का प्रयोग न करके 'पार्षद' शब्द का प्रयोग किया है। आरम्भ से ही वेदों की श्रुति परम्परा चली आ रही थी। इस परम्परा में जब लोगों के मन में पाठ, उच्चारण, स्वर आदि को लेकर जब सन्देह उत्पन्न होने लगा तब आचार्यों ने शंका के समाधान के लिए विचार किया कि क्यों न एक शास्त्र ही बना दिया जाए जो भविष्य में इन शंकाओं का निवारण कर सके। इसके लिए उन्होंने 'परिषद्', अर्थात् विशिष्ट आचार्यों की एक गोष्ठी बनाई और उस गोष्ठी में विचार कर नियम बनाए गए। इसलिए गोष्ठी में बनाए गए नियम का जो शास्त्र है, वह 'पार्षद' कहलता है। निरुक्तकार यह भी कहते हैं कि 'पार्षद' शब्द, पदों को मूल मान कर चलता है।

आप सभी ने इस इकाई के अन्तर्गत वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के विषय में ज्ञान प्राप्त कर लिया है। आइए अब हम अधोलिखित अभ्यास प्रश्नों के माध्यम से अपने पढ़े हुए विषय को जाँचने का प्रयास करते हैं।

अभ्यास प्रश्न– 1

1. वेद के आभ्यन्तर स्वरूप की रक्षा.....से होती है।

   (क) साहित्य (ख) इतिहास

   (ग) दर्शन (घ) निरुक्त

2. वेद के बाह्य स्वरूप की रक्षा के लिए.....उपाय हैं।

   (क) एक (ख) दो

   (ग) तीन (घ) चार

3. वेद का अध्ययन कराते समय गुरु मन्त्र का उच्चारण.....करते हैं।

   (क) नहीं (ख) स्वयं

   (ग) अस्पष्ट (घ) मन्द

4. गुरु द्वारा किये गये मन्त्रोच्चारण को शिष्य भी.....हैं।

(क) दोहराते (ख) मौन

(ग) परामुख (घ) अस्पष्ट

5. प्रातिशाख्यों द्वारा वेद रक्षा.....उपाय के अन्तर्गत आते हैं।

(क) सैद्धान्तिक (ख) व्यावहारिक

(ग) मौखिक (घ) अस्पष्ट

6. वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के रचयिता कौन हैं?

(क) कात्यायन (ख) शौनक

(ग) माहिषेय (घ) सोम

7. चरणव्यूह के अनुसार शुक्लयजुर्वेद में कितनी शाखायें है ?

(क) 15 (ख) 17

(ग) 18 (घ) 20

8. वर्तमान में शुक्लयजुर्वेद की उपलब्ध कितनी शाखायें हैं ?

(क) दो (ख) तीन

(ग) चार (घ) पाँच

9. पाणिनि का समय लगभग कितनी शताब्दी का माना गया है ?

(क) चौथी या पाचवीं (ख) छठीं या पाँचवीं

(ग) सातवीं (घ) आठवीं

10. आचार्य यास्क का समय किस शताब्दी का है?

(क) पाचवीं (ख) सातवीं

(ग) नौवीं (घ) दसवीं

11. प्रातिशाख्य के लिए यास्क ने अपने ग्रन्थ में क्या प्रयोग किया है ?

(क) पार्षद (ख) सूत्र

(ग) अध्याय (घ) पटल

12. 'वार्तिककार कात्यायन अलग हैं'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

13. 'प्रातिशाख्य सूत्र सुगठित शैली में है'– यह कथन है ?

(क) सत्य (ख) असत्य

14. 'वेद श्रुति परम्परा से चली आ रही'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

15. 'पार्षद शब्द पदों के मूल को मानकर चलता है'–यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

3.2.1 वाजसनेयि–प्रातिशाख्य का प्रतिपाद्य विषय

वाजसनेयि–प्रातिशाख्य, ऋक्प्रातिशाख्य से छोटा तथा अन्य प्रातिशाख्यों से बड़ा है। आठवें अध्याय के कुछ श्लोकात्मक सूत्रों को छोड़कर सम्पूर्ण प्रातिशाख्य सूत्र रूप में दिखाई देता है। इस प्रातिशाख्य में 8 अध्याय हैं। अध्याय के अन्तर्गत सूत्र हैं। वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के सभी मुद्रित संस्करणों में सूत्रों की संख्या समान नहीं है। उदाहरण के लिए जीवानन्द के संस्करण में सूत्रों की संख्या 727 है, वेंकटराम शर्मा के संस्करण में 726, इन्दु रस्तोगी के संस्करण में 740 है। इसका कारण यह है कि आठवें अध्याय के सूत्रों का विन्यास एवं संख्या नितान्त अव्यवस्थित है। विषयवस्तु की दृष्टि से वाक्य महत्त्वपूर्ण है, किन्तु विषय–विधान की दृष्टि से यह अव्यवस्थित है। वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के 8 अध्यायों के विषयों को इस प्रकार देखा जा सकता है–

अध्याय	सूत्र–संख्या	विषय
प्रथम	169	वर्णोत्पत्ति, अध्ययनविधि, संज्ञा–परिभाषा, वर्णो के उच्चारण स्थान तथा करण, पूर्वाङ्गपराङ्ग–चिन्ता।
द्वितीय	65	स्वर के नियम।
तृतीय	151	सन्धि के नियम।
चतुर्थ	198	सन्धि के नियम, पद–पाठ के नियम, क्रम–पाठ के नियम।
पञ्चम	86	अवग्रह के नियम।
षष्ठ	31	आख्यात और उपसर्ग के स्वर के नियम तथा कतिपय पदों का स्वरूप।
सप्तम	12	परिग्रह के नियम।
अष्टम	62	वर्णसमाम्नाय, अध्ययनविधि, वर्णों के देवता, पदचतुष्टय, पदों के गोत्र एवं देवता।

वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के मुख्य विषय–वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के मुख्य विषयों को अधोलिखित भागों में विभक्त किया जा सकता है।

1) **वर्ण–विचार**– वाजसनेयि–प्रातिशाख्य का मूल उद्देश्य वाजसनेयि–संहिता के परम्परागत शुद्ध उच्चारण को सुरक्षित रखता है। संहिता मन्त्रों के समूह हैं, मन्त्र वाक्यों के समूह हैं, वाक्य पदों के समूह हैं और पद वर्णों के समूह हैं। इस प्रकार वर्ण संहिता की मूल इकाई है। संहिता का शुद्ध उच्चारण वर्णों के शुद्ध उच्चारण पर आधारित है। यही कारण है कि वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के आठवें अध्याय में वर्णसमाम्नाय का कथन तथा प्रथम अध्याय में वर्णात्पत्ति, वर्णों के उच्चारण में स्थान और करण, अक्षर–विभाजन इत्यादि महत्त्वपूर्ण विषयों का विधान किया गया है।

2) **स्वर विचार**– संहिता का पाठ परम्परा के अनुसार करना पड़ता है। यह पाठ साधारण न होकर स्वराघातों के अनुसार होता है। स्वर की अत्यल्प त्रुटि होने पर भी महान् अनर्थ हो जाता है। प्रथम अध्याय में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के लक्षण, स्वरित के उच्चारण में हस्तप्रदर्शन इत्यादि महत्त्वपूर्ण विषयों का प्रतिपादन किया गया है। दूसरे तथा छठें अध्याय में वैदिक पदों में स्वर–विषयक नियमों का

विस्तृत विधान किया गया है।

3) **पदपाठ–विचार**– वाजसनेयि–प्रातिशाख्य, वाजसनेयि–संहिता के पद–पाठ पर आधारित है। यह पदों को सिद्ध मानता है और सिद्ध पदों से संहिता–पाठ के निर्माण के लिए नियमों का विधान करता है। वाजसनेयि–प्रातिशाख्य में पदों की सिद्धि नहीं की गई है, क्योंकि वे पहले से ही सिद्ध हैं। पदों का प्रकृति–प्रत्यय में विभाग प्रत्येक शास्त्र के विषय के बाहर की वस्तु है। वस्तुस्थिति होते हुए भी पदों के सामान्य स्वरूप का ज्ञान वक्ता को होना ही चाहिए क्योंकि संहिता के शुद्ध उच्चारण के लिए पदों का उच्चारण अपेक्षित है। चार प्रकार के पद एवं उनके लक्षण, पद–पाठ में इति–करण का विधान, स्थितोपस्थिति का स्वरूप, अवग्रह का विस्तृत विधान इत्यादि विषयों का प्रतिपादन वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के पहले एवं चौथे अध्याय के कतिपय सूत्रों तथा सम्पूर्ण पाँचवें अध्याय में किया गया है।

5) **क्रमपाठ–विचार**– पद–पाठ और संहितापाठ के बाद क्रम–पाठ आता है। पदपाठ और संहितापाठ, दोनों की पुष्टि के लिए क्रमपाठ उपयोगी है।

अतएव वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के चौथे अध्याय के अन्तिम सूत्रों तथा सम्पूर्ण सातवें अध्याय में क्रमपाठ–विषयक विधान किया गया है।

6) **वेदाध्ययन–विचार**– वेदाध्ययन अव्यवस्थित तथा अनियमित रूप से नहीं किया जा सकता है। वेदाध्ययन की अपनी विशिष्ट विधि है। इस विधि का वर्णन पहले तथा आठवें अध्याय के कतिपय सूत्रों में किया गया है। वेदाध्ययन का फल भी आठवें अध्याय में बतलाया गया है।

आप सभी ने इस इकाई के अन्तर्गत वाजसनेयि–प्रातिशाख्य का प्रतिपाद्य विषय में ज्ञान प्राप्त कर लिया है। आइए अब हम अधोलिखित अभ्यास प्रश्नों के माध्यम से अपने पढ़े हुए विषय को जाँचने का प्रयास करते हैं।

अभ्यास प्रश्न–2

1. वाजसनेयि–प्रातिशाख्य, ऋक्प्रातिशाख्य से ..... है।
   (क) बड़ा (ख) विस्तृत
   (ग) महत्त्वहीन (घ) छोटा
2. वाजसनेयि–प्रातिशाख्य ..... रूप में दिखाई देता है।
   (क) सूत्र (ख) श्लोक और सूत्र
   (ग) श्लोक (घ) पद्य
3. वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के मुद्रित संस्करणों में सूत्रों की संख्या ..... नहीं है।
   (क) लघु (ख) समान
   (ग) दीर्घ (घ) स्पष्ट
4. वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के ..... के सूत्रों की संख्या व्यवस्थित नहीं है।
   (क) आठवें अध्याय (ख) सातवें अध्याय
   (ग) छठें अध्याय (घ) पाँचवें अध्याय

5. वाजसनेयि–प्रातिशाख्य में दूसरे अध्याय में सूत्र संख्या.....हैं।

(क) 65 (ख) 75

(ग) 85 (घ) 95

6. जीवानन्द के संस्करण में सूत्रों की ..... संख्या कितनी है?

(क) 727 (ख) 827

(ग) 850 (घ) 926

7. वेंकटराम शर्मा के संस्करण में कितने सूत्र हैं?

(क) 726 (ख) 727

(ग) 827 (घ) 834

8. वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के किस अध्याय में सन्धि नियम हैं?

(क) तीसरे (ख) चौथे

(ग) पाँचवें (घ) छठें

9. वाजसनेयि–प्रातिशाख्य में परिग्रह के नियम किस अध्याय में है?

(क) छठें (ख) सातवें

(ग) आठवें (घ) नौवें

10. वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के आठवें अध्याय में कितने सूत्र हैं?

(क) 60 (ख) 62

(ग) 64 (घ) 66

11. वाजसनेयि–प्रातिशाख्य में वेदाध्ययन विधि किस अध्याय में है?

(क) आठवें (ख) सातवें

(ग) छठें (घ) पाँचवें

12. 'संहिता का शुद्ध उच्चारण वर्णों के शुद्ध उच्चारण पर आधारित है'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

13. 'संहितापाठ स्वराघातों पर आधारित है'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

14. 'पदपाठ और संहितापाठ के बाद क्रमपाठ आता है'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

15. 'मन्त्र वाक्यों के समूह हैं'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

3.2.2 वाजसनेयि–प्रातिशाख्य का प्रतिपाद्य देवता

वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के आठवें अध्याय में प्रतिपाद्य देवता के विषय में विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इसको हम निम्नलिखित सूत्रों में देख सकते हैं–

1) **वर्णदेवताः ।। 40 ।।**

अब वर्णों के देवताओं को कहते हैं।

2) **आग्नेयाः कण्ठ्याः।। 41।।**

कण्ठ वर्णों (अ, आ, आ३, अः, ह) के देवता अग्नि हैं।

3) **नैर्ऋत्या जिह्वामूलीयाः।। 42।।**

जिह्वामूलीय वर्णों (ऋ, ॠ, ॠ३, क, ख, ग, घ, ङ, क) के देवता नैर्ऋत्य कहे गए हैं।

4) **सौम्यास्तालव्याः।। 43।।** तालुस्थानीय वर्णों (इ, ई, ई३, ए, च, छ, ज, झ, ञ, य, श) के देवता सोम कहे गए हैं।

5) **रौद्रा दन्त्याः।।44।।**

दन्त्त वर्णों (लृ, लृ2, लृ३, त, थ, द, ध, न, ल, स) के देवता रुद्र कहे गए हैं।

6) **ओष्ठ्या आश्विनाः।।45।।** ओष्ठस्थानीय वर्णों (उ, ऊ, ऊ३, प, फ, ब, भ, म, व, प) के देवता अश्विन् कहे गए हैं।

7) **वायव्या मूर्धन्याः।।46।।**

मूर्धन्य वर्णों (ट, ठ, ड, ढ, ण, ष) के देवता वायु कहे गए हैं।

8) **शेषा वैश्वदेवाः।।47।।**

ऊपर कहे गए स्थानों को छोड़कर अन्य स्थान पर उत्पन्न या उच्चरित होने वाले जो वर्ण हैं उसके देवता विश्वदेव कहे गए हैं।

9) **अथ पददेवताः।।59।।**

अब पदों के देवता कहे जाते हैं।

10) **सर्वं तु सौम्यमाख्यातं नाम वायव्यमिष्यते।**
आग्नेयस्तूपसर्गः स्यान्निपातो वारुणः स्मृतः।। 60।।

सभी आख्यात के देवता सोम हैं, नामों के देवता वायु हैं। अग्नि को उपसर्गों का देवता कहते हैं तथा निपातों के देवता वरुण हैं।

पदों के गोत्रों और देवताओं को अधोलिखित रेखाचित्र से भली–भाँति समझा जा सकता है–

	नाम	आख्यात	उपसर्ग	निपात
गोत्र	भार्गव	भारद्वाज	वासिष्ठ	काश्यप
देवता	वायु	सोम	अग्नि	वरुण

आप सभी ने इस इकाई के अन्तर्गत वाजसनेयि–प्रातिशाख्य का प्रतिपाद्य देवता के विषय में ज्ञान प्राप्त कर लिया है। आइए अब हम अधोलिखित अभ्यास प्रश्नों के माध्यम से अपने पढ़े हुए विषय को जाँचने का प्रयास करते हैं।

अभ्यास प्रश्न–3

1. कण्ठ्य वर्णों के देवता.....हैं।

(क) वायु (ख) सोम

(ग) वरुण (घ) अग्नि

2. जिह्वामूलीय वर्णों के देवता.....हैं।

(क) वायु (ख) नैर्ऋत्य

(ग) सोम (घ) वरुण

3. तालुस्थानीय वर्णों के देवता ..... हैं।

(क) वरुण (ख) सोम

(ग) अग्नि (घ) सूर्य

4. दन्त्य वर्णों के देवता ..... हैं।

(क) रुद्र (ख) सोम

(ग) नैर्ऋत्य (घ) अश्विन्

5. ओष्ठस्थानीय वर्णों के देवता ..... हैं।

(क) अश्विन् (ख) सोम

(ग) अग्नि (घ) वायु

6. तालु वर्ण कौन है?

(क) च (ख) प

(ग) क (घ) न

7. मूर्धन्य वर्ण कौन–सा है?

(क) ट (ख) प

(ग) त (घ) क

8. दन्त्त वर्ण कौन–सा है?

(क) लृ (ख) क

(ग) ट (घ) प

9. जिह्वामूलीय वर्ण कौन–सा है?

(क) इ (ख) ऋ

(ग) ह (घ) प

10. कण्ठ्य वर्ण कौन–सा है?

(क) प (ख) आ

(ग) त (घ) न

3.2.3 वाजसनेयि–प्रातिशाख्य का वैशिष्ट्य

1. वाजसनेयि–प्रातिशाख्य में वर्ण–समाम्नाय का स्पष्ट रूप से कथन किया गया है। अन्य प्रातिशाख्यों में वर्ण–समाम्नाय का इस प्रकार कथन नहीं किया गया है। जिसके फलस्वरूप भाष्यकारों को इस विषय में ऊहापोह नहीं करना पड़ा तथा वाजसनेयि–प्रातिशाख्य में स्वीकृत वर्णों की संख्या हमें स्पष्ट ज्ञात हो जाती है।

2. भाषा–विज्ञान की दृष्टि से वाजसनेयि–प्रातिशाख्य का अत्यधिक महत्त्व है। वाजसनेयि–प्रातिशाख्य में वर्गों के स्वरूप और उनके उच्चारण–प्रकार का गम्भीर

एवं वैज्ञानिक विवेचन किया गया है। शब्दोत्पत्ति के मूल कारण एवं शब्दोत्पत्ति की प्रक्रिया के विषय में सूत्रकार ने जो कहा है वह ध्वनि–विज्ञान की दृष्टि से नितान्त महत्त्वपूर्ण है। उसी प्रकार–पद–विषयक विधान पद–विज्ञान की दृष्टि से उपादेय है।

3. वैदिक स्वर, वैदिक सन्धि, क्रम–पाठ इत्यादि के विषय में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विधान वाजसनेयि–प्रातिशाख्य में किये गये हैं।

4. अनेक विवादास्पद विषयों तथा उच्चारण–विषयक महत्त्वपूर्ण बातों के प्रसङ्ग में आचार्य कात्यायन ने अनेक अन्य आचार्यों के मत को प्रस्तुत किया है। वाजसनेयि–प्रातिशाख्य में इन दस आचार्यों का नामोल्लेख किया गया है। काण्व (1/123,1/149), शाकटायन (3/ 9, 3/ 12, 3/ 87, 4/ 5, 4/ 129,4/191), शाकल्य (3/10), औपशवि (3/131), काश्यप (4/5, 4/160), गार्ग्य (4/167), जातूकर्ण्य (4/125, 4/160, 5/22), दाल्भ्य (4/16), माध्यन्दिन (8/39) एवं शौनक (4/122)।

   इन आचार्यों के अतिरिक्त अन्य अनेक आचार्यों के मतों को नामोल्लेख के बिना प्रस्तुत किया गया है। यथा– एके (3/91, 3/128, 3/188, 5/23, 7/8), एकेषाम् (4/57, 4/128, 4/146) आदि।

5. वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के प्रत्येक अध्याय की समाप्ति सूत्रकार के द्वारा 'वृद्धं वृद्धिः' सूत्र के द्वारा की गई है। इसका अर्थ हुआ कि, यह शास्त्र अन्य शास्त्रों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है। अतएव इस शास्त्र के अध्ययन करने वालों की वृद्धि होती है। प्रातिशाख्य के अध्ययन के प्रति पाठकों की अभिरुचि बढ़ाने के लिए इस सूत्र को प्रत्येक अध्याय के अन्त में रखा गया है।

वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के निर्माण में अपनाई गई पद्धति– आचार्य कात्यायन ने वाजसनेयि–प्रातिशाख्य में माध्यन्दिन–संहिता की विशिष्टताओं को पूर्णरूपेण उल्लिखित किया है। स्थान–स्थान पर उन्होंने दूसरी शाखाओं की विशिष्टताओं को भी बतलाया है। इतने विशाल साहित्य की विशिष्टताओं को उल्लिखित करने के लिए आचार्य ने अपने सूक्ष्म निरीक्षण के आधार पर तीन प्रकार के सूत्रों का निर्माण किया है– (1) सामान्य सूत्र (2) अपवाद सूत्र और (3) निपातन सूत्र। सर्वप्रथम उन्होंने विस्तृत क्षेत्र वाली विधियों को सामान्य सूत्रों के रूप में उपनिबद्ध किया है। तदनन्तर अल्प क्षेत्र वाली विधियों को सामान्य सूत्रों के अपवाद सूत्रों के रूप में उपनिबद्ध किया है। सामान्य सूत्रों तथा अपवाद सूत्रों के अन्तर्गत न आने वाले स्थलों को निपातन के रूप में प्रस्तुत किया है। माध्यन्दिन–संहिता के सभी स्थल इन सूत्रों के अन्तर्गत आ गये हैं। इस प्रकार वाजसनेयि–प्रातिशाख्य का निर्माण इन तीन प्रकार के सूत्रों के रूप में हुआ है।

अधोलिखित रेखाचित्र के द्वारा वाजसनेयि–प्रातिशाख्य में उल्लिखित वर्णों के स्वरूप को समझा जा सकता है।

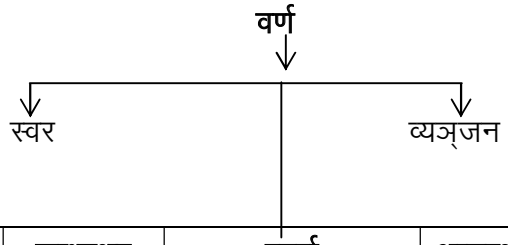

मूल स्वर	सन्ध्यक्षर	स्पर्श	अन्तस्थ	ऊष्म	अयोगवाह
अ आ आ3	ए ए3	कवर्ग– क, ख, ग, घ, ङ	य	श	क (जिह्वामूलीय), प (उपध्मानीय)
इ ई ई3	ऐ ऐ3	चवर्ग– च, छ, ज, झ, ञ	र	ष	अं (अनुस्वार), अः (विसर्जनीय)
उ ऊ ऊ3	ओ ओ3	टवर्ग– ट, ठ, ड, ढ, ण	ल	स	हुँ (नासिक्य),
ऋ ॠ ऋ3	औ औ3	तवर्ग– त, थ, द, ध, न,	व	ह	कुँ, खुँ, गुँ, घुँ (यम)
ऌ ॡ ऌ3		पवर्ग–प, फ, ब, भ, म			
=15	=8	=25	=4	=4	=9 =65

3.3 सारांश

आप सभी ने इस इकाई के अन्तर्गत वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के विविध पक्षों का अध्ययन किया, जिसमें वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के प्रतिपाद्य विषय, प्रतिपाद्य देवता और उनके वैशिष्ट्य को विस्तारपूर्वक जाना है। यहाँ पर स्पष्ट है कि सूत्रशैली में बना हुआ यह ग्रन्थ मुख्य रूप से संक्षिप्तता को अभिव्यक्त करता है। परन्तु सूत्रकार महर्षि कात्यायन ने विस्तृत अर्थ द्वारा शुक्लयजुर्वेद–संहिता के अर्थ को समझाने का या उसके संरक्षण करने का अथक प्रयास किया है। वाजसनेयि–शाखा में जिन सूत्रों और श्लोकों का उल्लेख हुआ है उससे इस विस्तृत अर्थ को अभिव्यक्त करता है। भले ही सूत्र छोटे हैं, लेकिन यह विस्तार को बतलाते हैं जैसे जब हम इस इकाई के अन्तर्गत प्रतिपाद्य देवता को देखते हैं तो किस प्रकार से वर्णों के प्रतिपाद्य देवता का यहाँ प्रतिपादन किया गया है कि जो कण्ठ से उच्चारित होने वाले वर्ण हैं, जो ओठ से उच्चारित होने वाले वर्ण हैं, दाँतों से उच्चारण जिन वर्णों का होता है, उनके देवता कौन–कौन हैं, उन सभी का स्पष्ट वर्णन किया गया है और फिर अन्त में यह भी बताया गया कि नाम, आख्यात इन सभी के भी देवता कहे गए हैं। एक और महत्त्वपूर्ण विषय को लेकर के विस्तृत विवेचना की गई है और स्पष्ट रूप से बताया गया है कि वाजसनेयि–प्रातिशाख्य भाषाविज्ञान की दृष्टि से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें वर्णों के स्वरूप और उनके उच्चारण के प्रकार की गम्भीरता को सविस्तार समझाया गया है साथ ही इसी ग्रन्थ में वैदिक स्वर, वैदिक सन्धि, क्रमपाठ और यहाँ तक कि वैदिक वर्णों के देवता भी निर्धारित किए गए हैं। उन देवताओं के ऋषि, गोत्र इत्यादि का भी विस्तार से वर्णन किया गया है। वाजसनेयि–प्रातिशाख्य की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि सभी आठ अध्यायों की समाप्ति सूत्रकार ने 'वृद्धं वृद्धिः' द्वारा की

है, जिसका अर्थ होता है कि यह शास्त्र अन्य शास्त्रों की अपेक्षा महत्त्वपूर्ण है तथा इस शास्त्र का अध्ययन करने वाले की बुद्धि भी वृद्धि को प्राप्त होती है।

3.4 शब्दावली

- **अनुक्रमणिका** – सूची।
- **क्रमपाठ** – दो बार पाठ।
- **नाम** – द्रव्यवाचक पद।
- **आख्यात** – क्रिया–वाचक पद।
- **निपात** – नाम, आख्यात और उपसर्ग से अतिरिक्त पद, जैसे च इत्यादि।
- **पद** – अक्षर समूह।
- **वर्ण** – अकारादि ध्वनियाँ।
- **व्यञ्जन** – स्वर की सहायता से उच्चारित होने वाले क, ख इत्यादि वर्ण।
- **संहिता** – एक श्वास में उच्चारित होने वाले वर्णों का मेल।
- **सन्धि** – वर्णों अथवा पदों का मेल।

3.5 अभ्यास प्रश्नों की उत्तरमाला

अभ्यास प्रश्न 1– 1 घ, 2 ख, 3 ख, 4 क, 5 क, 6 क, 7 क, 8 क, 9 ख, 10 ख, 11 क, 12 क, 13 क, 14 क, 15 क।

अभ्यास प्रश्न 2– 1 घ, 2 ख, 3 ख, 4 क, 5 क, 6 क, 7 क, 8 क, 9 ख, 10 ख, 11 क, 12 क, 13 क, 14 क, 15 क।

अभ्यास प्रश्न 3– 1 घ, 2 ख, 3 ख, 4 क, 5 क, 6 क, 7 क, 8 क, 9 ख, 10 ख,।

3.6 सन्दर्भ–ग्रन्थ

1. शुक्लयजुर्वेद–प्रातिशाख्य अथवा वाजसनेयि–प्रातिशाख्य – (सम्पा. एवं व्याख्या.) डॉ0 वीरेन्द्र कुमार वर्मा, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, पुनर्मुद्रित संस्करण–2019।
2. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति – पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान 37 बी0 रवीन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी, पञ्चम संस्करण, 1998 ई0।
3. वैदिक साहित्य और संस्कृति का स्वरूप – डॉ0 ओमप्रकाश पाण्डेय, विश्व प्रकाशन, संस्करण 1994 ई0।
4. वैदिक साहित्य का इतिहास – वेदाचार्य डॉ0 रघुवीर वेदालंकार, चौखम्भा ओरियन्टालिया, दिल्ली प्रकाशन।
5. वैदिक वाङ्मय का इतिहास (तीन भागों में) – पण्डित भगवद्दत्त, श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट–अमृतसर, संस्करण द्वितीय,संवत् 2013।

3.7 बोध–प्रश्न

1. वाजसनेयि–प्रातिशाख्य का परिचय वर्णित कीजिए

2. वाजसनेयि–प्रातिशाख्य की विषयवस्तु का विश्लेषण कीजिए।
3. वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के प्रतिपाद्य देवता का विवेचन कीजिए।
4. वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के वैशिष्ट्य का उल्लेख कीजिए।
5. वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के अनुसार पदों के गोत्र का संक्षेप में प्रतिपादन कीजिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 4 शौनक कृत बृहद्देवता के अनुसार वेद एवं वैदिक देवता

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 अनुक्रमणी–साहित्य

4.2.1 बृहद्देवता का स्वरूप एवं परिचय

4.2.2 बृहद्देवता के अनुसार वेद

4.2.3 बृहद्देवता के अनुसार वैदिक–देवता

4.3 सारांश

4.4 शब्दावली

4.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.6 सन्दर्भ–ग्रन्थ

4.7 बोध–प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप :

- बृहद्देवता का परिचय दे सकेंगे।
- बृहद्देवता के प्रतिपाद्य विषयों का विवेचन कर सकेंगे।
- बृहद्देवता के अनुसार वेद विषय का वर्णन कर सकेंगे।
- बृहद्देवता के अनुसार वैदिक–देवता का विश्लेषण कर सकेंगे।
- बृहद्देवता का वेद में महत्त्व विषय पर संक्षिप्त टिप्पणी लिख सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

छन्दोमयी वाणी वेद भारतीय ज्ञान परम्परा का मूल आधार ग्रन्थ है। वेद ईश्वरीय वाणी रूप में, ईश्वर के श्वास रूप में तथा अपौरुषेय रूप में कथित है। वेद सृष्टि के पूर्व अदृश्य रूप में विद्यमान थे। ऋषियों ने अपने तपोबल से वेदमन्त्रों का दर्शन किया। मन्त्रद्रष्टा ऋषि क्रान्तदर्शी थे वह तीनों कालों–वर्तमान, भूत, भविष्य की परिस्थितियों को जानते थे। ऋषियों, आचार्यों ने वेद की रक्षा के लिए षड्वेदाङ्गों की रचना की– शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष। ऋषियों ने जिन मन्त्रों का दर्शन किया वह उच्चारण एवं अर्थ की दृष्टि से उसी रूप में सुरक्षित रहें इसके लिए षड्वेदाङ्गों की रचना हुयी। प्रत्येक वेदपाठी को इन षड्वेदाङ्गों को जानना अति अनिवार्य है तभी वह वेद की पूर्ण रूप में सुरक्षा कर सकता है।

इन षड्वेदाङ्गों में अनुक्रमणी–साहित्य को नही गिना गया है। वैदिक–साहित्य में अनुक्रमणी–साहित्य की विस्तृत परम्परा दिखाई देती है। इसके विषय में पाश्चात्त्य और पारम्परिक विद्वानों के भिन्न–भिन्न मत हैं।

पाश्चात्त्य विद्वान् अनुक्रमणी–साहित्य को वैदिक ग्रन्थों की सूची मानते हैं। जबकि भारतीय विद्वान् वेदों की रक्षा में अनुक्रमणी को मात्र सूची ग्रन्थ नहीं मानते हैं वह दृढ़ता के साथ कहते हैं कि इन अनुक्रमणी–साहित्य से उन–उन वैदिक संहिताओं के स्वरूप का ज्ञान होता है। वैदिक–संहिताओं के देवता, ऋषि, छन्द, सूक्त, विनियोग की पूर्ण व्यवस्था अनुक्रमणी ग्रन्थों में स्पष्ट दिखाई देती है।

इस इकाई के अन्तर्गत आप सभी विस्तृत रूप में अनुक्रमणी–साहित्य तथा बृहद्देवता के विषय में विस्तृत रूप से जानेंगे।

4.2 अनुक्रमणी–साहित्य

वेदों की रक्षा के लिए कालान्तर में एक नवीन शैली के ग्रन्थों की रचना आचार्यों ने की जिसमें उन–उन वेद के ऋषि, देवता, छन्द आदि की सूची प्रस्तुत की गई है। ये ग्रन्थ 'अनुक्रमणी' (सूची) के नाम से प्रख्यात हैं। अनुक्रमणी प्रत्येक वेद की उपलब्ध होती है जिसमें अनेक ग्रन्थ प्रकाशित भी हो गये हैं। अनुक्रमणी के रचयिताओं में शौनक और कात्यायन नितान्त प्रख्यात आचार्य हैं। शौनक ने ऋग्वेद की और कात्यायन ने शुक्लयजुर्वेद प्रातिशाख्यों की रचना क्रमशः की थी। इन अनुक्रमणियों का वेदाङ्ग में न होने पर भी वेद की रक्षा तथा तद्गत अवान्तर विषयों के विवेचन के निमित्त महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं। 'ऋक्सर्वानुक्रमणी' की वृत्ति की भूमिका में वृत्तिकार 'षड्गुरुशिष्य' ने शौनक के ऋग्वेद की रक्षा के निमित्त जिन दस ग्रन्थों का उल्लेख किया है वे ये हैं– (1) आर्षानुक्रमणी, (2) छन्दोऽनुक्रमणी, (3) देवतानुक्रमणी, (4) अनुवाक–अनुक्रमणी, (5) सूक्तानुक्रमणी, (6) ऋग्विधान, (7) पादविधान, (8) बृहद्देवता, (9) प्रातिशाख्य (10) शौनक–स्मृति।

इन ग्रन्थों में आरम्भ की पाँच अनुक्रमणियाँ क्रमशः ऋग्वेद के दस मण्डलों के ऋषियों, छन्दों, देवताओं, अनुवाकों तथा सूक्तों की संख्या, उनके नाम तथा तद्विषयक महनीय बातों का क्रमबद्ध विवरण अनुष्टुप् पद्यों में प्रस्तुत करती हैं। ऋग्विधान में ऋग्वेदीय मन्त्रों का प्रयोग विशेष कार्य की सिद्धि के लिये बतलाया गया है। इस प्रकार के विधान–ग्रन्थ, अन्य वेदों में भी प्रायः उपलब्ध होते हैं सामवेद में ठीक इसी पद्धति का ग्रन्थ है– 'सामविधान' जो वस्तुतः अनुक्रमणी होने पर भी ब्राह्मण में परिगणित किया गया है और जिसमें साम का प्रयोग विविध अनुष्ठान में विशेष फल की कामना के लिये बतलाया गया है। शौनकीय प्रातिशाख्य ऋग्वेद से ही सम्बन्ध रखता है।

आप सभी ने इस इकाई के अन्तर्गत अनुक्रमणी–साहित्य के विषय में ज्ञान प्राप्त कर लिया है। आइये अब हम अधोलिखित अभ्यास प्रश्नों के माध्यम से अपने पढ़े हुए विषय को जाँचने का प्रयास करते हैं।

अभ्यास प्रश्न–1

1. पाश्चात्त्य विद्वानों के मत में अनुक्रमणी.....रूप में स्वीकृत है।
   (क) ग्रन्थ (ख) सूक्त
   (ग) सूची (घ) मन्त्र
2. अनुक्रमणी प्रत्येक .....की उपलब्ध होती है।
   (क) सूची (ख) ग्रन्थ
   (ग) अनुक्रमणिका (घ) तत्त्व

3. ऋग्विधान में .....के मन्त्रों का प्रयोग है।

(क) यजुर्वेद (ख) ऋग्वेद

(ग) सामवेद (घ) अथर्ववेद

4. सामविधान में ..... के मन्त्रों का प्रयोग हैं।

(क) ऋग्वेद (ख) यजुर्वेद

(ग) सामवेद (घ) अथर्ववेद

5. अनुक्रमणी वेदाङ्ग न होने पर भी .....हैं।

(क) गौण (ख) महत्त्पूर्ण

(ग) अप्रमुख (घ) अस्थिर

6. ऋग्वेद में कितने मण्डल हैं?

(क) 6 (ख) 8

(ग) 10 (घ) 12

7. शौनक ने ऋग्वेद की रक्षा के लिए कितने ग्रन्थों की रचना की है?

(क) 8 (ख) 10

(ग) 12 (घ) 14

8. बृहद्देवता के रचयिता कौन हैं?

(क) कात्यायन (ख) षड्गुरु

(ग) शौनक (घ) पिप्पलाद

9. छन्दोनुक्रमणी के रचयिता कौन हैं?

(क) कात्यायन (ख) माहिषेय

(ग) शौनक (घ) षड्गुरु

10. देवतानुक्रमणी किसकी रचना है?

(क) ऐतरेय (ख) शाकल

(ग) कात्यायन (घ) शौनक

11. 'वेदों की रक्षा के लिए आचार्यों ने नवीन शैली के ग्रन्थों की रचना की'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

12. 'अनुक्रमणी–साहित्य के प्रसिद्ध आचार्य शौनक और कात्यायन हैं'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

13. 'ऋग्वेदीय अनुक्रमणी–साहित्य में दस मण्डलों के छन्दों का विवरण है'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

14. 'सामवेदीय अनुक्रमणी को ब्राह्मणों में गिना गया है'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

15. 'ऋक्सर्वानुक्रमणी' के वृत्तिकार षड्गुरुशिष्य हैं'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

4.2.1 बृहद्देवता का स्वरूप एवं परिचय

बृहद्देवता अनुक्रमणी–साहित्य का एक प्रभावान् रत्न है जिसके आलोक में ऋग्वेद के देवता के रहस्य स्पष्टतः आलोकित होते हैं। बारह सौ पद्यों में निर्मित ग्रन्थ ऋग्वेद के देवताओं के विषय में प्रामाणिक प्राचीन तथा पर्याप्तरूपेण विस्तृत है। यह ग्रन्थ आठ अध्यायों में विभक्त है तथा प्रत्येक अध्याय में लगभग पाँच पद्यों का एक वर्ग होता है, परन्तु इस विभाजन का सम्बन्ध ऋग्वेद के अष्टकों के साथ किसी भी प्रकार से नहीं है। वर्गों के विभाजन भी बिल्कुल अव्यावहारिक तथा यथेच्छ कल्पित हैं। इसीलिए कभी–कभी आख्यान के बीच में ही वर्ग समाप्त हो जाता है। बृहद्देवता के पहले अध्याय तथा दूसरे अध्याय के आदिम 15 वर्ग (=125 श्लोक) ग्रन्थ की उपादेय भूमिका है जिसमें देवता के स्वरूप का, स्थान का तथा वैलक्षण्य का विवरण विस्तार के साथ दिया गया है। भूमिका के अन्तिम सात वर्गों का पूर्णतया व्याकरण से सम्बद्ध विषय निरुक्त से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है और निपात, अव्यय, सर्वनाम, संज्ञा, समास का वर्णन, शब्द–विभाजन में यास्क की अशुद्धियों की आलोचना के साथ किया गया है। दूसरे अध्याय के 26वें वर्ग से लेकर अन्त तक यह ग्रन्थ ऋग्वेद के प्रत्येक सूत्र के लिए (और कभी–कभी सूक्तान्तर्गत ऋचाओं के लिए) देवता का निर्देश क्रमशः बतलाता है, परन्तु यह केवल देवताओं की नीरस सूची नहीं है, इसमें सूक्तों के विषय में उपलब्ध आख्यानों का भी निर्देश बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है और इस कार्य में इसका लगभग चतुर्थांश (300 श्लोकों के आस–पास) उल्लेख हुआ है। ये अख्यान बृहद्देवता के प्राण हैं। काव्यशैली में निबद्ध ये आख्यान ऐतिहासिक रीति से महाभारत में निर्दिष्ट अनेक आख्यानों के साथ सम्पर्क रखते हैं। इस दृष्टि से बृहद्देवता कथासाहित्य का आदिग्रन्थ माना जा सकता है। महाभारतीय आख्यानों तथा बृहद्देवता–गत आख्यानों का पारस्परिक तुलनात्मक सम्बन्ध अभी तक विवाद का विषय बना हुआ है, परन्तु अधिकांश विद्वानों की दृष्टि में प्राचीनतर बृहद्देवता का ही अनुकरण अवान्तर–कालीन महाभारत ने उन–उन भाग में किया है। द्यादि्बवेद की 'नीतिमञ्जरी' (रचनाकाल 15 शतक) तो बृहद्देवता के ही अनुशीलन का परिणत फल है। सर्वानुक्रमणी में कात्यायन ने तथा वेदभाष्य में सायण ने इन आख्यानों को यहीं से उद्धृत किया है। इस प्रकार आख्यानों के प्राचीनतम संग्रह होने के कारण बृहद्देवता साहित्य सार्वभौम दृष्टि से भी अत्यन्त रोचक ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ यास्क के निरुक्त तथा कात्यायन की सर्वानुक्रमणी के मध्यकाल की महनीय कृति है। शौनक ने यहाँ निरक्त की देवताविषयक कल्पना को ही विशेषतः अंगीकृत नहीं किया है, बल्कि उसके अनेक वाक्यों को भी उद्धृत किया है। कात्यायन ने भी बृहद्देवता का उपयोग अपनी रचना 'सर्वानुक्रमणी' में बहुत ही अधिक किया है। सूत्र रूप में होने पर भी सर्वानुक्रमणी में बृहद्देवता के लगभग 30 श्लोक ज्यों के त्यों अल्प परिवर्तन के साथ स्वीकृत तथा उद्धृत किये गये हैं। अपाणिनीय पदों को बहुल सत्ता के हेतु सर्वानुक्रमणीकार कात्यायन, वार्तिककार वैयाकरण कात्यायन से सर्वथा भिन्न माने जाते हैं। 'सर्वानुक्रमणी' का मूल स्रोत होने के कारण कात्यायन का समय तो पाणिनि से बहुत ही प्राचीन होगा तथा निरुक्त से कुछ ही हटकर होगा।

बृहद्देवता ने अपने कथन की पुष्टि में अनेक प्राचीन आचार्यों के मतों का उल्लेख किया है। ऐसे मान्य आचार्यों में यास्क का उल्लेख 18 बार, शौनक का 15 बार, शाकटायन का 8 बार, ऐतरेय ब्राह्मण का 8 बार, शाकपूर्णि का 7 बार तथा गालव का 5 बार है।

शौनक का उल्लेख 'आचार्य शौनक' के रूप में कई स्थानों पर अकेले (2/136) तथा कहीं अन्य आचार्यों के साथ (5/39; 7/38) किया गया है। इससे इस ग्रन्थ के सम्पादक डॉ. मैकडॉनल की सम्मति है कि बृहद्देवता का रचयिता स्वयं आचार्य शौनक नहीं है, प्रत्युत उसके सम्प्रदाय का कोई आचार्य हैं जो काल–दृष्टि से उनसे बहुत दूर नहीं था। षड्गुरु शिष्य ने तो निश्चय रूप से शौनक को ही इसका प्रणेता बतलाया है।

आप सभी ने इस इकाई के अन्तर्गत बृहद्देवता के स्वरूप एवं परिचय के विषय में अध्ययन कर लिया है। आइये अब हम अधोलिखित अभ्यास प्रश्नों के माध्यम से अपने पढ़े हुए विषय को जाँचने का प्रयास करते हैं।

अभ्यास प्रश्न–2

1. बृहद्देवता कितने अध्यायों में विभक्त है?
   (क) 8 (ख) 10
   (ग) 12 (घ) 14
2. बृहद्देवता के प्रत्येक अध्याय में लगभग कितने पद्य होते हैं?
   (क) 3 (ख) 5
   (ग) 7 (घ) 9
3. बृहद्देवता के प्रथम और द्वितीय अध्याय में कुल कितने श्लोक हैं?
   (क) 115 (ख) 125
   (ग) 135 (घ) 145
4. बृहद्देवता में आचार्य यास्क का नाम कितने बार आया है?
   (क) 14 (ख) 16
   (ग) 18 (घ) 20
5. षड्गुरुशिष्य ने बृहद्देवता का रचयिता किसको माना है?
   (क) शाकल (ख) शौनक
   (ग) ऐतरेय (घ) कात्यायन
6. कभी–कभी आख्यान के बीच में ही.....समाप्त हो जाता है।
   (क) सूक्त (ख) अनुवाक
   (ग) वर्ग (घ) मन्त्र
7. ये आख्यान बृहद्देवता के .....हैं।
   (क) सूक्त (ख) आधार
   (ग) प्राण (घ) इकाई
8. बृहद्देवता कथासाहित्य का .....माना जाता है।
   (क) मूल ग्रन्थ (ख) आदिग्रन्थ
   (ग) आधुनिक ग्रन्थ (घ) पाश्चात्त्य ग्रन्थ
9. वेदभाष्य में .....ने इन आख्यानों को बृहद्देवता से लिया है।

(क) ऐतरेय (ख) सायण

(ग) माधव (घ) कात्यायन

10. बृहद्देवता कुल.....पद्यों में निबद्ध है।

(क) 1100 (ख) 1200

(ग) 1300 (घ) 1400

11. 'बृहद्देवता मात्र देवताओं की नीरस सूची नहीं है' –यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

12. 'बृहद्देवता अत्यन्त ही रोचक ग्रन्थ है'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

13. 'बृहद्देवता के आख्यानों का सम्बद्ध महाभारत ग्रन्थ से है'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

14. 'बृहद्देवता का विभाजन ऋग्वेद के अष्टक विभाजन पर आधारित नहीं है'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

15. 'बृहद्देवता' में ऋग्वेद के देवता के रहस्य स्पष्ट दिखाई देते हैं'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

4.2.2 बृहद्देवता के अनुसार वेद

वर्तमान में उपलब्ध शौनक महर्षि द्वारा प्रणीत बृहद्देवता ग्रन्थ का प्रतिपाद्य ऋग्वेद के देवताओं का वर्णन है। इस ग्रन्थ का उपक्रम करते हुए महर्षि शौनक कहते हैं–

'मन्त्रदृग्भ्यो नमस्कृत्वा समाम्नायानुपूर्वशः।
सूक्तर्गर्धर्चपादानाम् ऋग्भ्यो वक्ष्यामि दैवतम्।।(बृहद्देवता 1/1)

इस श्लोक से स्पष्ट है कि शौनक महर्षि के अनुसार सम्पूर्ण ऋग्वेद ऋचाओं, सूक्तों, अर्धर्चों, तथा पादों में विभक्त है और इस ग्रन्थ के मात्र प्रतिपाद्य ऋक्दैवत, सूक्तदैवत, अर्धर्चदैवत तथा पाददैवत का ज्ञान है। यद्यपि कोशों में दैवत शब्द का प्रयोग देवता के अर्थ में पाया जाता है किन्तु वैदिक–साहित्य में प्रयुक्त दैवत शब्द का अर्थ कोशों में दैवत शब्दार्थ से भिन्न ही है। वेदों के निरुक्तकार यास्क निरुक्त के दैवतकाण्ड में दैवत शब्द को परिभाषित करते हुए कहते हैं– **'तद्यानि नामानि प्राधान्यस्तुतीनां देवानां तद् दैवतमित्याचक्षते।'** (निरुक्त–7/2) अर्थात् ऋग्वेद में स्तुत देवताओं की जो प्रधान स्तुतियाँ हैं, उन स्तुतियों में जो उन–उन देवताओं के प्रधान–रूप से नाम आए हैं, उन्हें ही दैवत शब्द से अभिहित किया जाता है। दैवत ज्ञान के लिए इस ग्रन्थ के प्रयोजन का प्रतिपादन करते हुए शौनक महर्षि कहते हैं–

'वेदितव्यं दैवतं हि मन्त्रे–मन्त्रे प्रयत्नतः।
दैवतज्ञो हि मन्त्राणां तदर्थमवगच्छति।। (बृहद्देवता 1/2)

अर्थात् मन्त्रानुष्ठान के अधिकारी को यह आवश्यक है कि वह अपने प्रत्येक अनुष्ठीयमान मन्त्र के दैवत का ज्ञान प्राप्त करे दैवत ज्ञान प्राप्त अधिकारी ही मन्त्रोक्त अर्थों को प्राप्त करता है।

दैवत ज्ञान के अभाव में होने वाले अनुष्ठान वैफल्य को बतलाते हुए शौनक महर्षि ने कहा–

लोक्यानां वैदिकानां वा कर्मणाम् फलमश्नुते।।'

अर्थात् यदि दैवतज्ञान को प्राप्त किए बिना कोई व्यक्ति केवल मन्त्रों के अनुष्ठान मात्र से मन्त्रोक्त अर्थ को प्राप्त करना चाहे तो यह असम्भव है। मन्त्र चाहे लौकिक हों अथवा वैदिक, दोनों प्रकार के मन्त्रों के दैवत ज्ञान का होना अनिवार्य है। दैवत ज्ञान के द्वारा ही मन्त्रोक्त फल की प्राप्ति सम्भव है।

शौनक महर्षि के इस कथन का अभिप्राय है कि दैवत ज्ञान केवल देवता के ज्ञान मात्र से ही सम्बन्ध नहीं रखता है। देवताओं के सभी नाम अन्वर्थक होते हैं। उन–उन देवताओं द्वारा लोक उपकार के लिए किए जाने वाले कर्मों के आधार पर ही उनके उन–उन नाम पड़े हैं। इन्द्र चूँकि वज्र धारण करते हैं, अतएव ये वज्री कहे जाते हैं। कल्याण करने वाले देवता का ही नाम शङ्कर है। सम्पूर्ण जगत् में आत्मारूप से व्यापक देवता का ही नाम विष्णु है। देवताओं के उन–उन नामों के आधार की चर्चा करते हुए महर्षि शौनक ने कहा कि–

सर्वाण्येतानि नामानि कर्मतस्त्वाह शौनकः।
आशीरूपं च वाच्यं च सर्वं भवति कर्मतः।।

अर्थात् नैरुक्तों, प्राचीन वैदिकों तथा मधुक, श्वेतकेतु, एवं गालव नामक महर्षियों के अनुसार देवताओं के नामकरण के नौ आधार हैं–

(1) निवास, (2) कर्म, (3) रूप, (4) मङ्गल, (5) वाणी, (6) आशीस् (7) यदृच्छा, (8) सन्निकटवास (उपवास) तथा (6) अमुष्यायण (उच्च–कुलीनता)। यास्क, गार्ग्य, तथा रथीतर नामक महर्षियों के अनुसार नामकरण के आधार आशीस्, विषयभेद, वाणी तथा कर्म हैं। किन्तु शौनक महर्षि का कहना है कि देवताओं के समस्त नामों का आधार उनके द्वारा किए गए कर्म ही हैं, आशीस् विषयभेद तथा वाणी ये सबके सब कर्म के ही भिन्न–भिन्न रूप हैं। अतएव नामों के कर्म से उत्पन्न सिद्धान्त ही शौनक को मान्य हैं।

फलतः देवताओं के उन–उन नामों के द्वारा ही उनके स्वरूप, सामर्थ्य तथा कर्मों का भी ज्ञान हो जाता है। अतएव दैवत ज्ञानवान् अधिकारी बड़ी आसानी से जान लेता है कि हमारे द्वारा अनुष्ठीयमान मन्त्र के देवता का स्वरूप क्या है? इसके प्रधान कर्म कौन–कौन से हैं? इस देवता में हमारे कल्याणोपयोगी किन–किन अर्थों को प्रदान करने का सामर्थ्य है? और ऐसा जानकर अनुष्ठान करने वाले अधिकारी के द्वारा आराधना किये जाने वाले देवता भी यह जान लेते हैं कि हमारी आराधना करने वाले अधिकारी को हमारे स्वरूप, सामर्थ्य आदि का सम्यक् ज्ञान है। फलतः प्रसन्न होकर वह देवता उस अधिकारी को मन्त्रोक्त फल प्रदान कर देता है। दैवत ज्ञान का सबसे बड़ा लाभ यह होता है, कि अधिकारी को अपने आराध्य देव का सर्वदा ध्यान होता रहता है। उसका मन चञ्चल न होकर अपने आराध्य देव के स्वरूप चिन्तन में ही लगा रहता है और इस प्रकार वह शीघ्र ही अपने आराध्य देव को प्रसन्न करके अपने अभिलषित फल को प्राप्त कर लेने में सफल हो जाता है। इसलिए मन्त्रानुष्ठान से पूर्व दैवतज्ञान का होना आवश्यक है। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए महर्षि शौनक ने इस बृहद्देवता में ग्रन्थ का प्रणयन किया।

बृहद्देवता ग्रन्थ सम्पूर्ण ऋग्वेद के देवताओं का ज्ञानप्रद ग्रन्थ है। महर्षि शौनक की सूक्ष्मेक्षिका इतनी है कि वे इस लघुकाय ग्रन्थ में अत्यन्त वैज्ञानिक तथा सामासिक शैली में ऋग्वेद के सम्पूर्ण सूक्तों, ऋचाओं, अर्द्धर्चों तथा पादों का निर्देश करते हुए उनके देवताओं को जानने का प्रकार अत्यन्त सरल विधि से निर्दिष्ट कर देते हैं।

सम्पूर्णमृषिवाक्यं तु सूक्तमित्यभिधीयते।
दृश्यन्ते देवता यस्मिन्न् एकस्मिन् बहुषु द्वयोः।। (बृहद्देवता 1/13)

मन्त्रद्रष्टा ऋषि के सम्पूर्ण वाक्य को सूक्त कहते हैं, जिसमें देवता एक अथवा अनेक (मन्त्रों) में दिखाई देते हैं। (अर्थात् एक सूक्त के कभी एक मन्त्र से, कभी दो मन्त्रों में और कभी अनेक मन्त्रों में देवताओं के नाम दिखलाई पड़ते हैं।

देवतार्षार्थछन्दस्तो वैविध्यं च प्रजायते।
देवतैका तु यावत्सु देवतायास्तदुच्यते।। (बृहद्देवता 1/14)

देवता, ऋषि, अर्थ एवं छन्द की दृष्टि से (सूक्तों में) विविधता उत्पन्न होती है। (अर्थात् सूक्त विविध प्रकार के होते हैं।) जितने (सूक्तों में) एक देवता (की स्तुति) होती है, वह देवता का सूक्त अर्थात् देवता–सूक्त कहा जाता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार ऋवेद संहिता में उपलब्ध एक देवता के सभी मन्त्रों का संग्रह उस देवता का सूक्त कहलाएगा। जैसे– इन्द्रदेवता के सभी मन्त्र मिलकर 'इन्द्र–सूक्त' होगा।

ऋषिसूक्तं तु यावन्ति सूक्तान्येकस्य वै स्तुतिः।
यावदर्थसमाप्तिः स्याद् अर्थसूक्तं वदन्ति तत्।। (बृहद्देवता 1/15)

जितने सूक्त एक (ऋषि) के द्वारा की गयी स्तुति के रूप में हैं वह ऋषि–सूक्त (कहा जाता है)। एक विषय (अर्थ) की समाप्ति जहां हो, उसे अर्थ–सूक्त कहते हैं। इसके अनुसार ऋग्वेद–संहिता में उपलब्ध एक ऋषि के मन्त्रों का संग्रह उस ऋषि का सूक्त कहलाएगा। जैसे– विश्वामित्र ऋषि द्वारा दृष्ट सभी मन्त्र मिलकर 'विश्वामित्रसूक्त' होगा। एक अर्थ–सूक्त में एक ही विषय का प्रतिपादन किया जाता है।

समानछन्दसो याः स्युस् तच्छन्दःसूक्तमुच्यते।
वैविध्यमेवं सूक्तानाम् इह विद्याद्यथातथम्।। (बृहद्देवता 1/16)

जो (ऋचायें) समान (एक छन्द वाली हों, उसे छन्दः–सूक्त कहा जाता है। इस प्रकार यहाँ (ऋग्वेद में) सूक्तों की विविधता को ठीक–ठीक जानना चाहिए विशेषतः इसके अनुसार ऋग्वेद–संहिता में एक छन्द में उपलब्ध मन्त्रों का संग्रह उस छन्द का सूक्त कहलाएगा। जैसे– गायत्री छन्द में उपलब्ध सभी मन्त्रों का संग्रह 'गायत्री–सूक्त' होगा।

मन्त्राः नानाप्रकाराः स्युर् दृष्टा ये मन्त्रदर्शिभिः।
स्तुत्या चैव विभूत्या च प्रभावाद्देवतात्मनः।। (बृहद्देवता 1/34)

स्तुति के आधार पर और देवता के प्रभाव से उत्पन्न (विभूति) के आधार पर वे मन्त्र नाना प्रकार के हैं जो मन्त्रद्रष्टा ऋषियों द्वारा देखे गए हैं।

तात्पर्य यह है कि भिन्न–भिन्न ऋषियों ने मन्त्रों के देवताओं की स्तुति भिन्न–भिन्न प्रकार से की है। स्तुति में वैविध्य दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त देवताओं का ऐश्वर्य भी महान् है जिसका वर्णन मन्त्रों में इस प्रकार से किया गया है।

महाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुाा स्तुयते।
स्तुतिः कत्थना निन्दा च संशयः परिदेवना।
स्पृहाशीः कत्थना याञ्चा प्रश्नः प्रैषः प्रवल्हिका।। (बृहद्देवता 1/35)

स्तुति, प्रशंसा, निन्दा, संशय, निरुक्त 7/6 पर दुर्गाचार्य ने बतलाया है कि आत्मनिन्दा विलाप को परिदेवना कहते हैं, स्पृहा, आशीः, कत्थना, याचना, प्रश्न, प्रैष, प्रवल्हिका।

नियोगश्चानुयोगश्च श्लाघा विलपितं च यत्।
आचिख्यासाथ संलापः पवित्राख्यानमेव च।। (बृहद्देवता 1/36)

नियोग, अनुयोग, श्लाघा, विलपित, आचिख्यासा, संलाप और पवित्र आख्यान।

आहनस्या नमस्कारः प्रतिराधस्तथैव च।
संकल्पश्च प्रलापश्च प्रतिवाक्यं तथैव च।
प्रतिषेधोपदेशौ च प्रमादापह्नवौ च ह।
उपप्रैषश्च यः प्रोक्तः संज्वरो यश्च विस्मयः।।
आक्रोशोऽभिष्टवश्चैव क्षेपः शापस्तथैव च।
उपसर्गो निपातश्च नाम चाख्यातमित्यपि।।
भूतं भव्यं भविष्यं च पुमान् स्त्री च नपुंसकम्।
एवंप्रकृतयो मन्त्राः सर्ववेदेषु सर्वशः।। (बृहद्देवता 1/37,38,39,40)

आहह्नस्या, नमस्कार और उसी प्रकार प्रतिराध, संकल्प, प्रलाप और उसी प्रकार प्रतिवाक्य। प्रतिषेध और उपदेश, प्रमाद और अपह्नव और जिसे उपप्रैष, संज्वर और विस्मय कहा गया है।

आक्रोश, अभिष्टव, क्षेप। नाम, आख्यात, उपसर्ग और भूत, वर्तमान, भविष्य, पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग–इस प्रकार के मन्त्र सभी वेदों में सर्वत्र मिलते हैं।

वाक्यार्थदर्शनार्थीया ऋचोऽर्धर्चाः पदानि च।
ब्राह्मणे चाथ कल्पे च निगद्यन्तेऽत्र कानिचित्।। (बृहद्देवता 1/41)

ऋचाओं, अर्ध ऋचाओं और पादों का प्रयोजन वाक्यार्थ (वाच्यार्थ) को व्यक्त करना ही होता है। यहाँ (अर्थात् ऋग्वेद) (ऋचायें, अर्ध ऋचायें और पाद) ब्राह्मण (–ग्रन्थों) में और कल्प (=सूत्र) में उद्धृत की गई हैं।

आप सभी ने इस इकाई के अन्तर्गत बृहद्देवता के स्वरूप एवं परिचय के विषय में अध्ययन कर लिया है। आइये अब हम अधोलिखित अभ्यास प्रश्नों के माध्यम से अपने पढ़े हुए विषय को जाँचने का प्रयास करते हैं।

अभ्यास प्रश्न–3

1. इन्द्र देवता सम्बन्धित सूक्त क्या कहलायेगा?

(क) अग्नि–सूक्त (ख) मन्त्र

(ग) इन्द्र–सूक्त (घ) अनुवाक

2. समान छन्दों पर आधारित सूक्त क्या है?

(क) छन्दः–सूक्त (ख) मन्त्रसूक्त

(ग) वार्णिकसूक्त (घ) मात्रिकसूक्त

3. वेद के मन्त्र कैसे हैं?

(क) एकसमान (ख) विविध प्रकार के

(ग) कठिन (घ) सरल

4. 'परिदेवना' किसको कहते हैं?

(क) प्रसन्नता (ख) विलाप

(ग) हास्य (घ) क्रोध

5. सूक्त कितने प्रकार के हैं?

(क) समान (ख) असमान

(ग) विविध (घ) एक

6. 'बृहद्देवता में सूक्तों का निर्देश हुआ है'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

7. 'मन्त्रद्रष्टा ऋषि के सम्पूर्ण वाक्य को सूक्त कहते हैं'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

8. 'स्तुति में वैविध्य दिखाई देता हैं'– यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

9. 'इन्द्र वज्र को धारण करते हैं'–यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

10. 'नामों के कर्मजत्व सिद्धान्त ही शौनक को मान्य हैं'– यह कथन हे?

(क) सत्य (ख) असत्य

4.2.3 बृहद्देवता के अनुसार वैदिक–देवता

वेदितव्यं दैवतं हि मन्त्रे–मन्त्रे प्रयत्नतः।
दैवतज्ञो हि मन्त्राणां तदर्थमवगछति।। (बृहद्देवता 1/2)

(वेद का अध्ययन करने वाले को) प्रत्येक मन्त्र में देवता को प्रयत्नपूर्वक जानना चाहिए क्योंकि मन्त्रों के देवताओं को जानने वाला (व्यक्ति ही) उनके अर्थ को जानता है।

तद्धितांस्तदभिप्रायान् ऋषीणां मन्त्रदृष्टिषु।
विज्ञापयति विज्ञानं कर्माणि विविधानि च।। (बृहद्देवता 1/3)

ऋषियों के मन्त्रदर्शन (काल) में उन (मन्त्रों) में (तद् हितान्) उन (ऋषियों) के अभिप्रायों (तद् अभिप्रायान्) को, मन्त्रों के गूढ़ रहस्य (विशिष्ट ज्ञान, विज्ञान) को तथा विविध प्रकार के कर्मों (यागों) को (दैवतज्ञ ही) बतलाता है जैसा कि यास्क ने भी कहा है– **"उच्चावचैरभिप्रायैः मन्त्रदृष्टयो भवन्ति" (नि.– 7/1)**। जिन ऋषियों ने वेद के

मन्त्रों का दर्शन किया था, उन्होंने किस अभिप्राय विशेष को लेकर मन्त्र विशेष का दर्शन किया था–यह ज्ञात करना एक कठिन कार्य है। मन्त्र दर्शन करते समय मन्त्रविशेष में अपने किस अभिप्राय को प्रगट किया है–इस तथ्य को दैवतज्ञ समझ सकता है और दूसरों को समझा सकता है। गूढ़ रहस्य (विशिष्ट ज्ञान) को भी दैवतज्ञ ही समझ, समझा सकता है। मन्त्रों का विनियोग अनेक यागों में किया गया है। उन यागों को भी दैवतज्ञ ही समझ सकता है तथा दूसरों को समझा सकता है।

न हि कश्चिदविज्ञाय याथातथ्येन दैवतम्।
लौक्यानां वैदिकानां वा कर्मणां फलमश्नुते।। (बृहद्देवता 1/4)

(मन्त्रों में) यथार्थ रूप से देवता को न जानकर कोई भी व्यक्ति लौकिक एवं वैदिक कर्मों के फल को प्राप्त नहीं कर सकता है।

श्रौतसूत्रों में विहित जिन दर्शपूर्णमास आदि यागों का अनुष्ठान निहित (श्रुति–विहित) अग्नि में किया जाता है उन्हें श्रौतकर्म या वैदिककर्म कहा जाता है। गृह्यसूत्रों में विहित जिन उपनयन संस्कार आदि कर्मों का अनुष्ठान ब्रह्मादि में किया जाता है उन्हें गृह्यकर्म या स्मार्तकर्म या लौकिक कर्म कहा जाता है। इन दोनों प्रकार के कर्मों में वैदिक मन्त्रों का प्रयोग होता है। इसलिए व्यक्ति मन्त्रों के देवताओं को नहीं जानता है वह इन दोनों प्रकार के कर्मों का अनुष्ठान नहीं कर सकता है। अनुष्ठान के बिना फल प्राप्ति असम्भव है।

प्रथमो भजते त्वासां वर्गोऽग्निमिह देवतम्।
द्वितीयो वायुमिन्द्रं वा तृतीयः सूर्यमेव च।। (बृहद्देवता 1/5)

यहाँ (बृहद्देवता में निर्दिष्ट) इन (देवताओं) का प्रथम वर्ग अग्नि देवता से सम्बन्ध रखता है। द्वितीय (वर्ग) वायु अथवा इन्द्र से, और तीसरा वर्ग सूर्य से सम्बन्ध रखता है।

अर्थमिच्छन्नृषिर्देवं यं यमाहायमस्त्विति।
प्राधान्येन स्तुवन्भक्त्या मन्त्रतद्देव एव सः।। (बृहद्देवता 1/6)

पदार्थविशेष की इच्छा करता हुआ तथा (उस इच्छा की पूर्ति के लिए) भक्तिपूर्वक (देवता की) प्रधान रूप से स्तुति करता हुआ ऋषि जिस–देवता से कहता है (याचना करता है) कि 'यह हो जाय' ('यह पदार्थ प्राप्त हो जाय'), उसी देवता का वह मन्त्र होता है।

प्रत्यक्षं देवतानाम यस्मिन्मन्त्रेऽभिधीयते।
तामेव देवतां विद्वान् मन्त्रे लक्षणसंपदा।। (बृहद्देवता 1/11)

जिस मन्त्र में देवता का नाम प्रत्यक्ष (साक्षात्, स्पष्ट) रूप से हो जाता है, (उस) मन्त्र में (देवता–नाम–कथन–रूप इस) लक्षण की उपलब्धता के आधार पर उसे ही देवता जानना चाहिए।

तस्मात्तु देवतां नाम्ना मन्त्रे मन्त्रे प्रयोगवित्।
बहुत्वमभिधानां च प्रयत्नेनोपलक्षयेत्।। (बृहद्देवता 1/12)

अतः मन्त्रों के प्रयोगवेत्ता (विनियोग को जानने वाले व्यक्ति) प्रत्येक मन्त्र में नाम के आधार पर देवता को और विशेषण–पदों (अभिधा, पदों) के बहुत्व को प्रयत्नपूर्वक देखना (जानना) चाहिए।

मन्त्र के देवता के परिज्ञान का सर्वोत्तम साधन देवता के नाम यदि मन्त्र में किसी देवता के नाम का कथन किया गया है तो नाम के आधार पर मन्त्र के देवता का निर्णय कर लेना चाहिए किन्तु देवताओं के मुख्य नामों को जान लेना ही पर्याप्त नहीं है। प्रत्येक देवता का कथन करने वाले अनेक गुणपद या विशेषणपद होते हैं। जैसे– वृत्रहा, वृत्रतुर, अंहोमुच, पुरन्दर इत्यादि अनेक विशेषणपद इन्द्र से सम्बन्धित हैं। इस प्रकार के विशेषणपदों के आधार पर भी मन्त्रों में देवता निर्णय किया जाना चाहिए।

यश्चैन्द्रो मध्यमस्थानो गणः सोऽयमतः परः।
विमानानि च दिव्यानि गणश्चाप्सरसां तथा।। (बृहद्देवता 1/121)

जो इन्द्र से सम्बद्ध मध्यम (अन्तरिक्ष) स्थान वाला गण है उसे तथा दिव्य विमानों एवं अप्सराओं के गण को (कहा जायेगा)।

इन्द्राश्रयस्तु पर्जन्यो रुद्रो वायुर्बृहस्पतिः।
वरुणः कश्च मृत्युश्च देवश्च ब्रह्मणस्पतिः।। (बृहद्देवता 1/122)

पर्जन्य, रुद्र, वायु, बृहस्पति, वरुण, कं, मृत्यु और ब्रह्मणस्पति देवता इन्द्र के आश्रित हैं।

मन्युश्च विश्वकर्मा च मित्रः क्षेत्रपतिर्यमः।
तार्क्ष्यो वास्तोष्पतिश्चौव सरस्वांश्चैवमत्र ह।।
अपांनपाद्दधिक्राश्च सुपर्णोऽथ पुरूरवाः।।
ऋतोऽसुनीतिर्वेनश्च तस्यैतस्याश्रयेऽदितिः।।
त्वष्टा च सविता चैव वातो वाचस्पतिस्तथा।
धाता प्रजापतिश्चैव अथर्वाणश्च ये स्मृताः।।
श्येनश्चैवैवमग्निश्च तथेळा चैव या स्मृता।
विधातेन्दुरहिर्बुध्न्यः सोमोऽहिरथ चन्द्रमाः।। (बृहद्देवता 1/123,124,125,126)

मन्यु, विश्वकर्मा, मित्र, क्षेत्रपति (निघण्टु 5/4 में क्षेत्रस्य पतिः), यम, तार्क्ष्य, वास्तोष्पति और उसी प्रकार सरस्वान् भी यहाँ हैं। अपांनपात्, दधिक्रा, सुपर्ण, पुरूरवा, ऋत, असुनीति, वेन और अदिति इसी के आश्रय में हैं। त्वष्टा, सविता, वात, वाचस्पति, धाता, प्रजापति और अथर्वा कहे गये हैं। इसी प्रकार श्येन, अग्नि तथा जिसे इडा कहा गया है वह विधाता, इन्दु, अहिर्बुध्न्य, सोम, अहि और चन्द्रमा भी इन्द्र के अश्रित हैं।

विश्वानरश्च वै देवो रुद्राणां संस्तुतो गणः।
मरुतोऽङ्गिरसश्चैत्र पितरश्चभुभिः सह।।
राका वाक् सरमाप्त्याश्च भृगवोऽघ्न्या सरस्वती।
यम्युर्वशी सिनीवाली पथ्या स्वस्तिरुषाः कुहूः।।
पृथिव्यनुमतिर्धनुः सीता लाक्षा तथैव गौः।
गौरी च रोदसी चैव इन्द्राण्याश्चैष वै पतिः।।
छन्दस्त्रिष्टुप् च पंक्तिश्च लोकानां मध्यमश्च यः।
एतेष्वेवाश्रयो विद्यात् सवनं मध्यमं च यत्।।
ऋतू च ग्रीष्महेमन्तौ यश्च सामोच्यते बृहत्।
शक्वरीषु च यद्गीतं नाम्ना तत्साम शाक्वरम्।। (बृहद्देवता 1/127,128,129,130)

वैश्वानर देवता, एक साथ स्तुति प्राप्त करने वाला सरमा, रुद्रगण, मरुद्गण, अङ्गिरा, ऋभुगण के साथ–साथ पितृगण राका, वाक्, सरमा, आप्त्यगण, भृगुगण, अघ्न्या, सरस्वती, यमी, उर्वशी, सिनीवाली, पथ्या, उषा, कुहू, पृथिवी, अनुमति, धेनु, सीता, लाक्षा, गाय, गौरी, रोदसी, (इन्द्र के ही आश्रित हैं), और वह (इन्द्र) इन्द्राणी त्रिष्टुप् और पंक्ति छन्द तथा लोकों का जो मध्यम (=अन्तरिक्ष लोक) और जो मध्यम सवन (= माध्यन्दिन सवन) है।

इन्हें भी इन उपर्युक्त देवों के साथ–साथ इन्द्र के आश्रित समझना चाहिए। ग्रीष्म और हेमन्त ये दो ऋतुयें और जो बृहत् नामक साम है तथा शक्वरी ऋचाओं पर गाया जाने वाला शक्वर नामक साम है वह भी इन्द्र के आश्रित हैं।

4.3 सारांश

आचार्य शौनक द्वारा रचित बृहद्देवता से सम्बन्धित इस इकाई को आप सभी ने पढ़ लिया है। यहाँ यह बात स्पष्ट है कि बृहद्देवता यद्यपि एक अनुक्रमणी ग्रन्थ है। यह षड्वेदाङ्गों में नहीं गिना गया परन्तु वेदों की रक्षा में अत्यन्त उपयोगी है। वैदिक–संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् इनके अर्थ और उच्चारण पद्धति की रक्षा के लिए षड्वेदाङ्ग हैं। कालान्तर में आचार्यो ने वेदों की रक्षा के लिए अनुक्रमणी–साहित्य की रचना की। अनुक्रमणी–साहित्य की वेद में समृद्ध परम्परा रही है। इस इकाई में अनुक्रमणी–ग्रन्थ बृहद्देवता के विस्तृत स्वरूप, वेद और उससे सम्बन्धित वैदिक देवता को जानने का अवसर प्राप्त हुआ है। बृहद्देवता ऋग्वेद–संहिता में सूक्त, मन्त्र, ऋषि, छन्द, देवता का परिचय तथा इनके आधार पर ऋग्वेद का विभाजन जानने के लिए बृहद्देवता अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ है, यह विषय स्पष्ट होता है। आठ अध्यायों में विभक्त यह ग्रन्थ ऋग्वेद–संहिता को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करता है। मन्त्रों से सम्बन्धित देवता, ऋषि, छन्द, विनियोग को जानने, लौकिक तथा पारलौकिक महत्त्व का भी प्रतिपादन इस ग्रन्थ को देखने से मिलता है। आप सभी ने बृहद्देवता से सम्बन्धित इस इकाई का विस्तृत अध्ययन कर लिया है अब आप विस्तृत प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ हो सकेंगे।

4.4 शब्दावली

- **स्पृहा** – इच्छा
- **कत्थना** – गर्व या अंहकार
- **प्रैषं** – आज्ञा, आह्वान (बुलाना)
- **प्रवल्हिका** – पहेली
- **नियोग** – नियुक्त करना
- **अनुयोग** – आदेश
- **श्लाघा** – शेखी या डींग हांकना
- **विलपित** – विलाप
- **आचिख्यासा** – वर्णन करने की इच्छा
- **संलाप** – बातचीत या वार्तालाप
- **आहनस्या** – वासनायुक्त मन्त्र

- **प्रतिराध** – बाधा या रुकावट
- **प्रलाप** – बकवास, व्यर्थ बोलना
- **प्रतिवाक्य** – उत्तर
- **प्रमाद** – उन्मत्त या नशा
- **अपह्नव** – प्रति आख्यान
- **संज्वर** – क्षोभ, उद्वेग।

4.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1– 1 ग, 2 ख, 3 ख, 4 ग, 5 ख, 6 ग, 7 ख, 8 ग, 9 ग, 10 घ, 11 क, 12 क, 13 क, 14 क, 15 क।

अभ्यास प्रश्न 2– 1 क, 2 ख, 3 ख, 4 ग, 5 ख, 6 ग, 7 ग, 8 ख, 9 ख, 10 ख, 11 क, 12 क, 13 क, 14 क, 15 क।

अभ्यास प्रश्न 3– 1 ग, 2 क, 3 ख, 4 ख, 5 ग, 6 क, 7 क, 8 क, 9 क, 10 क,।

4.6 सन्दर्भ–ग्रन्थ

1. शौनकीय बृहद्देवता (प्रथम अध्याय) – (व्याख्या.) आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी, भवदीय प्रकाशन, अयोध्या, फैजाबाद।
2. शौनकीय बृहद्देवता (प्रथम अध्याय) – (व्याख्या.) डॉ0 वीरेन्द्र कुमार वर्मा, ज्ञानप्रकाश प्रतिष्ठान सी0 के0 1/12, गङ्गामहल पटनीटोला, वाराणसी।
3. बृहद्देवता (प्रथम द्वितीयाध्यायौ) – (सम्पा.) प्रो0 ओमप्रकाश पाण्डेय, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।
4. बृहद्देवता (सम्पूर्ण) – (सम्पा.) रामकुमार राय, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
5. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति – पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान 37 बी0 रवीन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी, पञ्चम संस्करण, 1998 ई0।
6. वैदिक साहित्य और संस्कृति का स्वरूप – डॉ. ओमप्रकाश पाण्डेय, विश्व प्रकाशन संस्करण 1994 ई0।

4.7 बोध–प्रश्न

1. बृहद्देवता का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. बृहद्देवता के प्रतिपाद्य का वर्णन कीजिए।
3. बृहद्देवता के अनुसार वेद विषय का उल्लेख कीजिए।
4. बृहद्देवता के अनुसार वैदिक देवताओं का विश्लेषण कीजिए।
5. बृहद्देवता के महत्त्व को संक्षेप में प्रतिपादित कीजिए।

इकाई 5 अनुक्रमणी साहित्य का परिचय

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 अनुक्रमणी-साहित्य

5.2.1 संहिता अनुसार अनुक्रमणी-साहित्य का विभाजन

5.2.2 अनुक्रमणी-साहित्य परिचय एवं प्रतिपाद्य विषय

5.2.3 अनुक्रमणी-साहित्य का महत्त्व

5.3 सारांश

5.4 शब्दावली

5.5 अभ्यास प्रश्नों की उत्तरमाला

5.6 सन्दर्भ-ग्रन्थ

5.7 बोध-प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप :

- अनुक्रमणी-साहित्य का परिचय दे सकेंगे ।
- उन-उन संहिता ग्रन्थों से सम्बन्धित अनुक्रमणी ग्रन्थों का आप विश्लेषण कर सकेंगे।
- अनुक्रमणी-साहित्य के प्रतिपाद्य विषय का विवेचन कर सकेंगे ।
- अनुक्रमणी-साहित्य के महत्त्व विषय पर टिप्पणी लिख सकेंगे।
- विषयवस्तु के अनुसार किसी एक अनुक्रमणी ग्रन्थ का वर्णन कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

वेदाङ्गों की संख्या छः है- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष। इन वेदाङ्गों के साथ एक अन्य शास्त्र का नामोल्लेख आता है- अनुक्रमणी-साहित्य। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि यह अनुक्रमणी-साहित्य क्या है? यह किस वेदाङ्ग में रखा जाए। अनुक्रमणी-साहित्य के विषय में दो मतों का उल्लेख सामने आता है। एक पाश्चात्त्य मत और दूसरा भारतीय मत। पाश्चात्त्यों का मत है कि अनुक्रमणी-साहित्य एक अलग प्रकार का शास्त्र है या ग्रन्थ है। मैक्समूलर, नामक पाश्चात्त्य विद्वान् ने इसे एक व्यवस्थित सूची (Index) ग्रन्थ माना है। भारतीय विद्वान् ऐसा नहीं मानते हैं, उनका कहना है कि यह एक परम्परा से पूर्ण शास्त्रीय ग्रन्थ ही है। यह वेदाङ्गों का ही एक भाग है। क्योंकि इन अनुक्रमणी-साहित्य में ऋषि, देवता, सूक्त, छन्द इत्यादि के आधार पर संहिता-मन्त्रों का क्रम दिखलाया गया है। अब प्रश्न यह है कि इस अनुक्रमणी-साहित्य को किस वेदाङ्ग में रखा जाए। तो इसका उत्तर यही है कि यह अनुक्रमणी-

साहित्य छः वेदाङ्गों से सम्बन्धित है।

अनुक्रमणी में ऋषि-अनुक्रमणी, मन्त्रानुक्रमणी, सूक्तानुक्रमणी, देवतानुक्रमणी, छन्दोऽनुक्रमणी है। इस प्रकार यह ऋषि का अनुक्रम होने से यह कल्प वेदाङ्ग के अन्तर्गत है। देवता, मन्त्र, सूक्त का अनुक्रम होने से मूलपाठ के अन्तर्गत होने से शिक्षा वेदाङ्ग के अन्तर्गत है। छन्द अनुक्रम का वर्णन होने से यह छन्द वेदाङ्ग के अन्तर्गत है। इसलिए भारतीय परम्परा के अनुसार यह अनुक्रमणी-साहित्य छः वेदाङ्गों के अन्तर्गत ही स्वीकार किया गया है। अनुक्रमणी नाम क्यों किया गया है? इसका सामान्य स्वरूप है- **'सर्वपरिज्ञेयार्थ वर्णनात् अनुक्रमणी शब्दं निर्भुवन्ति विपश्चितः'** अर्थात्- सभी जो परिज्ञेय पदार्थ जो उसके विषय में जानने योग्य है उन शब्दों का निरूपण करने के कारण यह अनुक्रमणी है। यह अनुक्रमणी-साहित्य का प्राचीन स्वरूप है। जो भारतीय शास्त्रीय परम्परा में सर्वमान्य है। भारतीय पारम्परिक दृष्टि से छः वेदाङ्गों के अन्तर्गत ही रखा गया है।

5.2 अनुक्रमणी-साहित्य

अनुक्रमणी साहित्य एक (Index) या सूची ग्रन्थ नहीं है। यह एक मूलग्रन्थ को अनुक्रम से उसका परिचय प्रस्तुत करने वाला छः वेदाङ्गों के अन्तर्गत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। ऋग्वेद-संहिता के क्रम के अनुसार बृहद्देवता नामक ग्रन्थ में विषयवस्तु का निरूपण किया गया है। यह मूल ग्रन्थ का अनुक्रम से वर्णन करने वाला अनुक्रमणी-साहित्य है। यह कोई (प्दकमग) या सूची ग्रन्थ नहीं है। अनुक्रमणी प्रत्येक वेद की उपलब्ध होती है। जिसमें अनेक ग्रन्थ प्रकाशित भी हो गये हैं। अनुक्रमणी के रचयिताओं में आचार्य शौनक और आचार्य कात्यायन अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। वेदाङ्गों के अन्तर्गत इनका स्वरूप वर्णन होने की दृष्टि से वेद की रक्षा तथा तद्गत अवान्तर विषयों के निवेचन के निमित्त यह अनुक्रमणी आचार्यों की एक महत्त्वपूर्ण कृति है। अनुक्रमणी-साहित्य के रचनाकारों की परम्परा में हम आचार्य शौनक की बृहद्देवता को देखते हैं। तत्-तत् वेद संहिताओं से सम्बन्धित अनुक्रमणी-साहित्य को आप सब इस प्रकार समझ सकते है।

आचार्य शौनक ने ऋग्वेद-संहिता के मण्डल क्रम एवं अष्टक क्रम को देखते हुए बृहद्देवता जैसे अनुक्रमणी ग्रन्थ की रचना की। अब विद्वानों में यह प्रश्न उठता है कि आचार्य शौनक बृहद्देवता के रचनाकार नहीं बल्कि आश्वलायन हैं क्योंकि **'शौनकाय नमः'** का उल्लेख ग्रन्थ में आया है। इसका उत्तर यह है कि शौनक नाम के अतिरिक्त गोत्र का नाम है। ऋषि शौनक जिस गोत्र के हैं तो उन्होंने ग्रन्थारम्भ के पूर्व ऋषि शौनक का नामेच्चारण किया है। शौनक का नाम होने से यदि यह कहा जाए कि यह शौनक प्रणीत नहीं है तो ऐसा नहीं है। ऋषि परम्परा में आचार्य शौनक के दो शिष्य हुए- एक का नाम आश्वलायन प्रसिद्ध हुआ। जो ऋग्वेद में आगे बढ़े। दूसरे शिष्य- कात्यायन हुए, जो यजुर्वेद का अध्ययन करके आगे बढ़े। इसलिए यह माना जाता है कि आचार्य आश्वलायन ने बृहद्देवता अनुक्रमणी की रचना की और अपने गुरु आचार्य शौनक का नाम लिया। परन्तु भारतीय परम्परा बृहद्देवता के रचनाकार आचार्य शौनक को ही मानती है। आश्वलायन को नहीं।

आपने अभी तक अनुक्रमणी-साहित्य के सामान्य परिचय को भली-भाँति समझ लिया है। आइए अब हम अधोलिखित अभ्यास प्रश्नों के माध्यम से अपने पढ़े हुए विषय को जाँचने का प्रयास करते हैं।

अभ्यास प्रश्न-1

1. वेदाङ्ग .....हैं।
   (क) चार (ख) छः
   (ग) आठ (घ) दस
2. आश्वलायन .....सम्बन्धित हैं।
   (क) ऋग्वेद से (ख) यजुर्वेद से
   (ग) सामवेद से (घ) अथर्ववेद से
3. कात्यायन .....सम्बन्धित हैं।
   (क) ऋग्वेद से (ख) यजुर्वेद से
   (ग) सामवेद से (घ) अथर्ववेद से
4. 'आचार्य शानक के दो शिष्य प्रसिद्ध हुए'- यह कथन है?
   (क) सत्य (ख) असत्य
5. 'बृहद्देवता के रचनाकार आचार्य शौनक हैं'- यह कथन है?
   (क) सत्य (ख) असत्य
6. 'अनुक्रमणी-साहित्य वेद के मूल ग्रन्थों से सम्बन्धित हैं'- यह कथन है?
   (क) सत्य (ख) असत्य
7. 'बृहद्देवता अनुक्रमणी में छन्द अनुक्रम का उल्लेख है'- यह कथन है?
   (क) सत्य (ख) असत्य
8. 'ऋषि नाम के अतिरिक्त शौनक गोत्र नाम है'- यह कथन है?
   (क) सत्य (ख) असत्य

5.2.1 संहिता अनुसार अनुक्रमणी-साहित्य का विभाजन

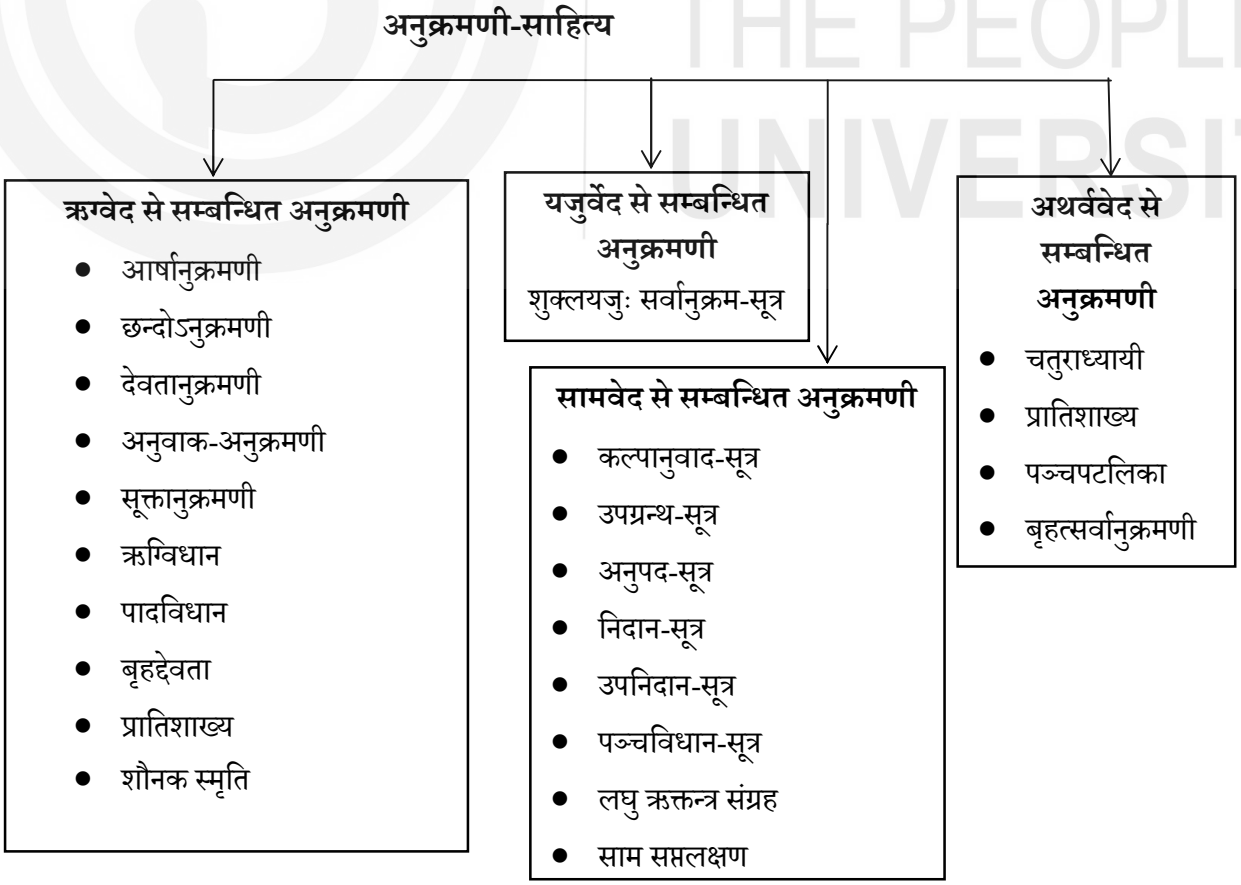

इस प्रकार आप सभी ने अनुक्रमणी-साहित्य की विस्तृत परम्परा का अध्ययन कर लिया है। आइए अब हम अधोलिखित अभ्यास प्रश्नों के माध्यम से अपने पढ़े हुए विषय को जाँचने का प्रयास करते हैं।

अभ्यास प्रश्न-2

1. छन्दोऽनुक्रमणी किस वेद से सम्बन्धित है?

   (क) ऋग्वेद से (ख) यजुर्वेद से

   (ग) सामवेद से (घ) अथर्ववेद से

2. शौनक स्मृति किस वेद से सम्बन्धित है?

   (क) ऋग्वेद से (ख) यजुर्वेद से

   (ग) सामवेद से (घ) अथर्ववेद से

3. शुक्लयजुः सर्वानुक्रम-सूत्र किस वेद से सम्बन्धित है?

   (क) ऋग्वेद से (ख) यजुर्वेद से

   (ग) सामवेद से (घ) अथर्ववेद से

4. निदान-सूत्र .....सम्बन्धित है?

   (क) ऋग्वेद से (ख) यजुर्वेद से

   (ग) सामवेद से (घ) अथर्ववेद से

5. उपग्रन्थ-सूत्र .....सम्बन्धित है?

   (क) ऋग्वेद से (ख) यजुर्वेद से

   (ग) सामवेद से (घ) अथर्ववेद से

6. चतुरध्यायी .....सम्बन्धित है?

   (क) ऋग्वेद से (ख) यजुर्वेद से

   (ग) सामवेद से (घ) अथर्ववेद से

7. 'पञ्चपटलिका अथर्ववेद से सम्बन्धित है'- यह कथन है?

   (क) सत्य (ख) असत्य

8. 'कल्पानुवाद-सूत्र सामवेद से सम्बन्धित है'- यह कथन है?

   (क) सत्य (ख) असत्य

9. 'ऋग्विधान ऋग्वेद से सम्बन्धित है'- यह कथन है?

   (क) सत्य (ख) असत्य

10. 'साम सप्तलक्षण सामवेद से सम्बन्धित है'- यह कथन है?

    (क) सत्य (ख) असत्य

5.2.2 अनुक्रमणी-साहित्य परिचय एवं प्रतिपाद्य विषय

अभी तक आपने अनुक्रमणी-साहित्य के विषय में और वैदिक संहिताओं से सम्बन्धित अनुक्रमणी के वर्गीकरण को समझा। आइये अब हम प्रमुख अनुक्रमणी-साहित्य का संक्षिप्त परिचय और प्रतिपाद्य विषयों को क्रमपूर्वक जानते हैं।

1. **बृहद्देवता-** यह ऋग्वेद से सम्बन्धित है। बृहद्देवता अनुक्रमणी-साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ आठ अध्यायों में विभक्त है, इसमें देवता के स्वरूप का स्थान का तथा वैलक्षण्य का विवरण विस्तार के साथ दिया गया है।

2. **सर्वानुक्रमणी-** ऋग्वेद के विषय में आवश्यक सामग्री की भी एक ऋग्वेदानुक्रमणी है जिसके दो खण्डों में स्वर, आख्यात, निपात, शब्द, ऋषि, छन्द, देवता तथा मन्त्रार्थ-विषयक आठ अनुक्रमणियों का एकत्र संग्रह है।

3. **शुक्लयजुः सर्वानुक्रमसूत्र-** यह शुक्लयजुर्वेद से सम्बन्धित है। इनके रचयिता कात्यायन ही माने जाते हैं। इसमें पाँच अध्याय हैं। सूत्रों के ऊपर अर्थ को ठीक-ठीक समझाने के लिए भाष्य भी प्रकाशित हैं। जिसके रचयिता महायाज्ञिक प्रजापति के पुत्र महायाज्ञिक श्री देव हैं। इसका परिचय प्रति अध्याय की पुष्पिका से मिलता है। इसमें माध्यन्दिन-संहिता के देवता, ऋषि तथा छन्दों का विस्तृत विवरण दिया गया है।

सामवेदीय ग्रन्थ- सामवेद के श्रौतयाग से सम्बद्ध अनेक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। जिनमें बहुत से अभी तक हस्तलिखित रूप में ही हैं। इनके अनुक्रमणी ग्रन्थ इस प्रकार हैं-

1. **कल्पानुपद सूत्र-** यह 2 प्रपाठकों में और प्रत्येक 12 पटलों में विभक्त है। यह आर्षेय कल्प तथा क्षुद्र-सूत्र का परिशिष्ट प्रतीत होता है।
2. **उपग्रन्थ सूत्र-** 4 प्रपाठकों में है। सायण के अनुसार इसके कर्ता कात्यायन हैं। प्रथम तीन प्रपाठक क्षुद्र-सूत्र के परिशिष्ट हैं और अन्तिम प्रपाठक साम के प्रतिहार भाग का परिचय प्रदान करता है।
3. **अनुपद सूत्र-** यह दस प्रपाठकों में विभक्त है। यह पञ्चविंशब्राह्मण की संक्षेप में व्याख्या करता है।
4. **निदान सूत्र-** यह दस प्रपाठकों में विभक्त है। इस ग्रन्थ के रचयिता पतञ्जलि माने गये हैं।
5. **उपनिदान सूत्र-** यह दो प्रपाठकों में विभक्त है। इसमें प्रथम रूप से छन्द का सामान्य वर्णन हैं। यहाँ छन्दों का वर्णन है। निदान और उपनिदान-सूत्र से दोनों छन्दवेदाङ्ग के अन्तर्गत आते हैं।
6. **पञ्चविधान सूत्र-** यह दो प्रपाठकों में विभक्त है। इसमें सामों के पाँच विभाजन को विस्तार से बतलाया गया है।
7. **लघु ऋक्तन्त्र संग्रह-** यह एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है। इसमें संहितापाठ को पदपाठ के रूप में विस्तार से बतलाया गया है। मन्त्रों के स्वरूप को जानने के लिए यह उपयोगी ग्रन्थ है।
8. **साम सप्तलक्षण-** इस ग्रन्थ में साम सम्बन्धी ज्ञातव्य तथ्यों का संकलन है।

अथर्ववेदीय ग्रन्थ-

बृहत्सर्वानुक्रमणी- इसमें अथर्ववेद के प्रत्येक काण्ड के सूक्तों के मन्त्र, ऋषि, देवता तथा छन्दों का पूर्ण विवेचन दिया गया है। यह अथर्ववेद-संहिता के अनुसार 20 काण्डों में विभक्त है।

इस प्रकार आप सभी ने अनुक्रमणी-साहित्य का परिचय एवं उसके प्रतिपाद्य विषयों के बारे में समझ लिया है। आइए अब हम अधोलिखित अभ्यास प्रश्नों के माध्यम से अपने पढ़े हुए विषय को जाँचने का प्रयास करते हैं।

अभ्यास प्रश्न-3

1. ऋग्वेदीय देवता के रहस्य ..... में है।
   (क) बृहद्देवता (ख) निदान
   (ग) उपनिदान (घ) कल्प
2. सर्वानुक्रमणी का सम्बन्ध .....से है।
   (क) ऋग्वेद (ख) यजुर्वेद
   (ग) सामवेद (घ) अथर्ववेद
3. शुक्लयजुः सर्वानुक्रमसूत्र में .....का वर्णन मिलता है।
   (क) शाकल-संहिता (ख) माध्यन्दिन-संहिता
   (ग) बाष्कल-संहिता (घ) काण्व-संहिता
4. आर्षेय-कल्पसूत्र का .....परिशिष्ट है।
   (क) बृहद्देवता (ख) कल्पानुपद सूत्र
   (ग) सर्वानुक्रमणी (घ) चतुरध्यायी
5. उपग्रन्थ-सूत्र में प्रथम तीन प्रपाठक ..... के परिशिष्ट हैं।
   (क) क्षुद्रसूत्र (ख) कल्पसूत्र
   (ग) योगसूत्र (घ) व्याकरणसूत्र
6. अनुपद सूत्र ..... की संक्षेप में व्याख्या करता है।
   (क) सामविधान (ख) महासूत्र
   (ग) पञ्चविंशब्राह्मण (घ) शौनक
7. उपग्रन्थ सूत्र में कितने प्रपाठक है?
   (क) 2 (ख) 4
   (ग) 6 (घ) 8
8. अनुपद सूत्र में कितने प्रपाठक हैं?
   (क) 4 (ख) 6
   (ग) 8 (घ) 10
9. कल्पानुपाद सूत्र में कितने प्रपाठक हैं?
   (क) 2 (ख) 4

(ग) 6 (घ) 8

10. कल्पानुवाद सूत्र में कुल कितने पटल हैं?

(क) 6 (ख) 8

(ग) 10 (घ) 12

11. सायण के अनुसार उपग्रन्थ सूत्र के कर्ता कौन हैं?

(क) पतञ्जलि (ख) मायण

(ग) शौनक (घ) कात्यायन

12. निदान-सूत्र में कितने प्रपाठक हैं?

(क) 4 (ख) 6

(ग) 8 (घ) 10

13. पञ्चविधान-सूत्र में कितने प्रपाठक हैं?

(क) 2 (ख) 4

(ग) 6 (घ) 8

14. 'लघुऋक्तन्त्र संग्रह में पदपाठ का विचार हैं'- यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

15. 'मन्त्रों के स्वरूप को जानने का उपयोगी ग्रन्थ लघुऋक्तन्त्र संग्रह है'- यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

16. 'उपनिदान सूत्र में छन्द का सामान्य वर्णन है'- यह कथन हैं?

(क) सत्य (ख) असत्य

17. 'सामवेद के श्रौतयाग से सम्बद्ध अनेक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं'- यह कथन हैं?

(क) सत्य (ख) असत्य

18. 'शुक्लयजुः सर्वानुक्रमसूत्र ग्रन्थ के रचयिता महायाज्ञिक श्री देव हैं'- यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

19. 'माधवभट्ट की भी एक ऋग्वेदानुक्रमणी है'- यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

20. 'सर्वानुक्रमणी में मन्त्रार्थ विषयक वर्णन प्राप्त होता है'- यह कथन है?

(क) सत्य (ख) असत्य

5.2.3 अनुक्रमणी साहित्य का महत्त्व

वैदिकवाङ्मय में अनुक्रमणी-साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अनुक्रमणी-साहित्य प्रतिपादित विषयवस्तु वेद के मूल ग्रन्थों का आश्रय लेकर हैं। इसलिए भारतीय परम्परा में यह छः वेदाङ्गों के अन्तर्गत स्वीकृत हैं। इन अनुक्रमणी ग्रन्थों में देवता के स्वरूप का, स्थान का तथा वैलक्षण्य का विस्तार के साथ विवरण दिया गया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में अन्तिम सात वर्गों का पूर्णतया व्याकरण से सम्बद्ध विषय निरुक्त से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है और निपात, अव्यय, सर्वनाम,

संज्ञा, समास का वर्णन शब्द विभाजन में यास्क के निरुक्त के साथ उल्लेख भी देखने को मिलता है। ऋग्वेद सम्बन्धित अनुक्रमणी में प्रत्येक सूक्त के लिए देवता का निर्देश क्रमशः बतलाया है, परन्तु यह केवल देवता की नीरस सूची नहीं है, इसमें सूक्तों के विषय में उपलब्ध आख्यानों का भी निर्देश बड़े सुन्दर ढ़ंग से किया गया है। बृहद्देवता में आख्यानों का सुन्दर वर्णन है। ये आख्यान बृहद्देवता के प्राण हैं। काव्यशैली में निबद्ध ये आख्यान ऐतिहासिक रीति से महाभारत में निर्दिष्ट अनेक आख्यानों से साथ सम्पर्क रखते हैं।

आचार्य सायण ने अथर्ववेदीय भाष्य के उपोद्घात में पाँच विशिष्ट उपयोगी ग्रन्थों का विषय निर्देश किया है। जिनमें कौशिक तथा वैतानसूत्र का परिचय है। तीसरा ग्रन्थ नक्षत्रकल्प है जिसमें तीस महाशक्तियों का निमित्तभेद से वर्णन है। जिसमें 'अमृत शान्ति' आदिम है और 'अभया महाशान्ति' आदिम है। चतुर्थ ग्रन्थ 'आंगिरसकल्प' में अभिचार के काल-स्थानादि का निर्देश, कर्ता, कारियता और सदस्यों की आत्मरक्षा तथा शत्रुकृत अभिचारों के निवारण के भी उपाय बतलाये गये हैं। पञ्चम ग्रन्थ शान्तिकल्प में विनायक ग्रह से गृहीत व्यक्ति का लक्षण तथा विनायकी शान्ति के लिए उपयुक्त होमादि का वर्णन है। अथर्व परिशिष्ट में अन्य अथर्ववेदीय विषयों का विवरण दिया गया है।

इस प्रकार यह अनुक्रमणी साहित्य सम्पूर्ण वेद के मूलतत्त्व- ऋषि, सूक्त, मन्त्र, छन्द को क्रमबद्ध रूप से जानने में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं।

5.3 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत आप सभी ने अनुक्रमणी-साहित्य, वेदानुसार, अनुक्रमणी-साहित्य का विभाजन, प्रतिपाद्य, वैशिष्ट्य के विषय में ज्ञान प्राप्त कर लिया। सम्पूर्ण इकाई की विषयवस्तु पर दृष्टिपात करने पर स्पष्ट है कि अनुक्रमणी-साहित्य वैदिक मूल ग्रन्थों को सम्यक् रूप से जानने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। इन अनुक्रमणी ग्रन्थों का अध्ययन करने के उपरान्त हम मूल ग्रन्थों को भली प्रकार उसी प्रकार जानने में समर्थ होते हैं जिस प्रकार वेदाङ्गों के अध्ययन से वेद की रक्षा भली-भाँति होती है। अनुक्रमणी ग्रन्थों के सूत्रों एवं श्लोकों में वैदिक देवता, सूक्त, ऋषि और छन्द की व्याख्या एवं क्रमबद्ध व्यवस्था द्वारा वैदिक ग्रन्थों का बड़ी मार्मिकता और गाढ़ विद्वत्ता के साथ हुयी है। ये अनुक्रमणी सूत्रों और श्लोकों को यदि वेद का अध्ययन करने वाले भली-भाँति समझ पाते हैं, वेद की रक्षा करने में समर्थ हो पाते हैं। इस इकाई में अनुक्रमणी-साहित्य के विषयवस्तु का विस्तार के साथ प्रतिपादन करने के साथ आप सभी को अभ्यास प्रश्नों द्वारा विषय का अभ्यास कराया गया है। आप सभी इस इकाई को भली-भाँति समझ गये हैं। अब आप इस इकाई से सम्बन्धित विस्तृत प्रश्नों तथा संक्षिप्त टिप्पणियों का उत्तर देने में समर्थ हो सकेंगे।

5.4 शब्दावली

- **बृहद्देवता** - विशाल देवताओं का वर्णन।
- **अनुक्रमणी** - मूल ग्रन्थ की क्रमानुसार व्याख्या।
- **प्रातिशाख्य** - प्रत्येक शाखा।

- **छन्दोऽनुक्रमणी** - छन्दों का क्रमानुसार व्यवस्था।
- **देवता-अनुक्रमणी** - देवताओं का क्रमानुसार वर्णन।
- **सूक्तानुक्रमणी** - सूक्तों का क्रमानुसार उल्लेख।

5.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1- 1 क, 2 क, 3 ख, 4 क, 5 क, 6 क, 7 क, 8 क।

अभ्यास प्रश्न 2 - 1 क, 2 क, 3 ख, 4 ग, 5 ग, 6 घ, 7 क, 8 क, 9 क, 10 क।

अभ्यास प्रश्न 3- 1 क, 2 क, 3 ख, 4 ख, 5 क, 6 ग, 7 ख, 8 घ, 9 क, 10 घ, 11 घ, 12 घ, 13 क, 14 क, 15 क, 16 क, 17 क, 18 क, 19 क, 20 क।

5.6 सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. बृहद्देवता (सम्पूर्ण) - (सम्पा.) रामकुमार राय, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
2. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति - पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान 37 बी0 रवीन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी, पञ्चम संस्करण, 1998 ई0।
3. वैदिक साहित्य और संस्कृति का स्वरूप - डॉ. ओमप्रकाश पाण्डेय, विश्व प्रकाशन, संस्करण 1994 ई0।

5.7 बोध-प्रश्न

1. अनुक्रमणी-साहित्य पर प्रकाश डालिए।
2. अनुक्रमणी-साहित्य के विभाजन को स्पष्ट कीजिए।
3. अनुक्रमणी-साहित्य के प्रतिपाद्य विषय का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
4. अनुक्रमणी-साहित्य का महत्त्व पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
5. पठित विषयवस्तु से किसी एक अनुक्रमणी-साहित्य पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।